परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2014
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3
के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

विषय सूची

आलेख

रजनी रंजन सिंह एवं **हेमन्त नामदेव**
शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के संदर्भ में विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति 1

कंचन शर्म एवं **दीपक शर्मा**
बदलते परिदृश्य में उच्च शिक्षा का स्वरूप और विकास 21

आर.पी. पाठक एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज**
अध्यापक शिक्षा की वर्तमान समस्याएं और चुनौतियां : उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में 41

प्रवीन देवगन एवं **आकांक्षा अग्निहोत्री**
किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति एवं सामाजिक अनुवर्तिता का अध्ययन 57

मधु कुशवाहा एवं **महिमा यादव**
स्त्रियाँ, विकलांगता और उच्च शिक्षा 77

शोध टिप्पणी / संवाद

अर्चना वेरूलकर
सेवापूर्व प्रशिक्षार्थियों हेतु कंप्यूटर आधारित शिक्षण एवं मूल्यांकन 91

के.सी. वशिष्ठ एवं **प्रवेन्द्र सिंह बिरला**
माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन 101

सुनील कुमार गौड़
शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए शोध अध्ययनों की उपादेयता 109

विभा सिंह पटेल
हिंदी लोक साहित्य में मानव-मूल्य और शिक्षा 117

चिंतक और चिंतन

रश्मि श्रीवास्तव
महात्मा गाँधी की दृष्टि में महिलाओं की शिक्षा 127

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 21, अंक 3, दिसंबर 2015

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के संदर्भ में विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति

रजनी रंजन सिंह* एवं **हेमन्त नामदेव***

सारांश

किसी भी राष्ट्र के विकास व समृद्धि के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। भारत में शिक्षा को मौलिक अधिकार में शामिल किये जाने के बाद भी आज लाखों बच्चे ऐसे भी हैं, जो विद्यालय नहीं जाते हैं या प्राथमिक स्तर पर ही विद्यालय जाना छोड़ देते हैं एवं लाखों बच्चे ऐसे भी हैं जो परिवार की गरीबी, आर्थिक तंगी, प्राकृतिक आपदा के कारण परिवार से अलग होने और सामाजिक सुरक्षा के अभाव में खेलने व पढ़ने की आयु में बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने लगते हैं और शिक्षा से वंचित हो जाते हैं। अत: इन श्रमिक बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु केंद्र सरकार की विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं में एक योजना इस उद्देश्य को लेकर प्रारम्भ की गयी कि बाल मजदूरों को मजदूरी करने की बजाय बेहतर ढंग से शिक्षा प्राप्त हो, ताकि वे भी गुणवत्तापूर्ण अपना जीवन व्यतीत कर सकें। अत: राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत जिले में भी विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों की स्थापना की गयी। अत: इन विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षा की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए इस प्रकरण का शोध समस्या के रूप में चयन किया गया है।

प्रस्तावना

मनुष्य के सर्वांगींण विकास करने के लिए शिक्षा एक महती आवश्यकता है। शिक्षा के बिना किसी भी व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। शिक्षा मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसे संस्कारों व सामाजिक परिवर्तन का आधार और

**आचार्य, शिक्षा विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)
*शोधार्थी, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

आर्थिक उन्नति का शक्तिशाली साधन भी माना जाता है। शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान और नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित कर सम्पूर्ण भारत में उनका क्रियान्वयन किया है।

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

देश में 86वें संविधान संशोधन द्वारा वर्ष 2002 में शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया और इसे लागू करने हेतु नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम पारित किया गया जिसके फलस्वरूप 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो गया। यह अधिनियम 1 अप्रेल 2010 से सम्पूर्ण देश में सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में लागू किया गया। अधिनियम के प्रावधानों में 6 से 14 वर्ष के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, अनामांकित और शाला से बाहर के बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण एवं गुणवत्तायुक्त शिक्षा की व्यवस्था करना, बच्चों के एक ही कक्षा में रोक पर प्रतिबंध लगाना, निजी स्कूलों में केपिटेशन फीस व स्क्रीनिंग पर प्रतिबंध लगाना तथा निजी स्कूलों में पूर्व प्राथमिक कक्षा में 25 प्रतिशत बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करना सुनिश्चित किया गया।[1]

भारत में ही नहीं विश्व के कई देशों के समक्ष बाल श्रमिकों को शिक्षित करना एक गंभीर चुनौती है। विश्व में बाल श्रम का प्रारम्भ औद्योगीकरण के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। सस्ते श्रम के लालच में बच्चों को उद्योगों में कार्य करने पर लगाया गया और बाल श्रम कानून के अभाव में दीर्घावधि तक इनसे कम मजदूरी दर पर काम लिया जाता रहा। भारत में आज भी लघु और कुटीर उद्योगों में बाल श्रमिकों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में बाल मजदूरी अविकसित एवं विकासशील देशों में व्याप्त विभिन्न प्रकार की समस्याओं का परिणाम ही है। इसीलिए भारत सरकार भी विभिन्न देशों और संगठनों की सहायता से देश में बाल मजदूरी को समाप्त करने की दिशा में प्रयासरत है।

बाल श्रमिक से आशय

''बाल श्रमिकों में बालक और बालिकाओं, दोनों को ही सम्मिलित किया जाता है। जब इन बच्चों की उम्र खेलने, खाने और पढ़ने की होती है, तब ये कारखानों, होटलों और दुकानों पर कार्य कर रहे होते हैं।''

बाल मजदूरी (निषेध और नियमन) अधिनियम 1986 के अनुसार – ''वह प्रत्येक बच्चा, जो कि 14 वर्ष या कम उम्र का हो, किसी भी प्रकार की मजदूरी करता है, बाल श्रमिक कहलायेगा।'' दूसरे शब्दों में, किसी कारखाने, खदान या होटल आदि में 14 वर्ष से

[1]. मल्होत्रा (2011). राइट टू एजुकेशन : फ्री एंड कम्पलसरी एजुकेशन फार आल।

कम उम्र के शारीरिक या मानसिक श्रम करने वाले बच्चे बाल श्रमिक कहलाते हैं।

भारत में 14 वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या अमेरिका की आबादी और बाल श्रमिकों की संख्या हालैण्ड व स्पेन जैसे देशों की पूरी जनसँख्या के बराबर है। बाल श्रम की दर अफ्रीका में अधिकतम है, किन्तु संख्या की दृष्टि से भारत का स्थान पहला है।

भारत की कुल श्रमशक्ति का 3.6 प्रतिशत हिस्स्सा 14 वर्ष से भी कम उम्र के बच्चों का है। इनमें से 85.7 प्रतिशत बच्चे तो कृषिगत कार्यों में और शेष 14.3 प्रतिशत गैर-कृषिगत कार्यों में संलग्न है। इनमें से 9 प्रतिशत से भी कम बच्चे उत्पादन, सेवा और मरम्मत जैसे कार्यों को करते है, जबकि सिर्फ 0.8 प्रतिशत बच्चे ही कारखानों में काम करते है।[2]

बाल श्रम कानून 1986 के अनुसार 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को खतरनाक प्रक्रियाओं और विशेष उद्योगों में काम करने से रोकता है, परन्तु कृषि क्षेत्र के विषय में यह कानून पूरी तरह से मौन है जबकि इस क्षेत्र में देश के 85 प्रतिशत से अधिक बच्चे कार्य कर रहे हैं।

श्रम और रोजगार मंत्री मल्लिकार्जुन खड़गे के अनुसार सन 1991 की जनगणना के अनुसार देश में 5 से 14 आयु वर्ग समूह के बाल श्रमिकों की संख्या 11.28 मिलियन और 2009 में 1.26 करोड़ थी, जो 2004-05 में 10.75 लाख रह गयी। परन्तु राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना द्वारा 2010-11 में किये सर्वे के अनुसार वर्तमान में यह संख्या 49.84 लाख है।[3] जो श्रम करने वाले बच्चों की संख्या में गिरावट की स्थिति को दर्शाती है।

ग्राफ-1

14 वर्ष कि आयु के बाल श्रमिकों की संख्या के आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण

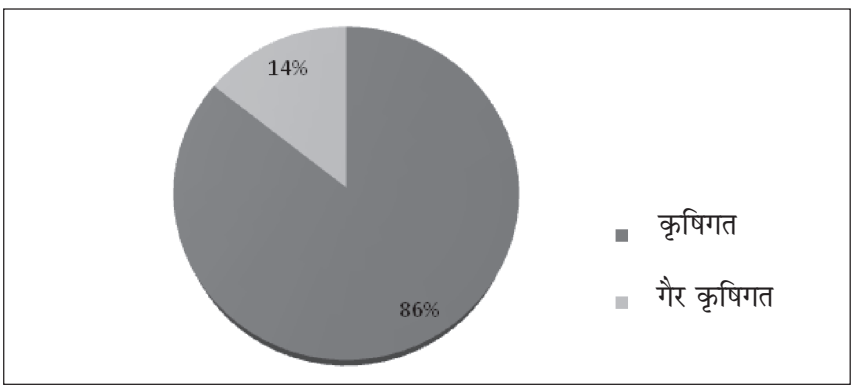

2. सिंह, पी. (2005) चाइल्ड लेबर इन इंडिया, मोहन सौमित्र- ''बाल मजदूरी देश के लिए अभिशाप''

3. वेब दुनिया, नई दिल्ली, सोमवार 11 मार्च, 2013 (14:23 IST), Hindilok.com, 16 June 2012.

तालिका-1

भारत में 5 से 14 आयु वर्ग समूह के बाल श्रमिकों की संख्या

आयु वर्ग समूह	वर्ष 1991	वर्ष 2009	वर्ष 2004-05	वर्ष 2010-11
5 से 14 वर्ष	11.28 मिलियन	1.26 करोड़	10.75 लाख	49.84 लाख

ग्राफ-2

बाल श्रमिकों की संख्या के आंकड़ों का रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुतीकरण

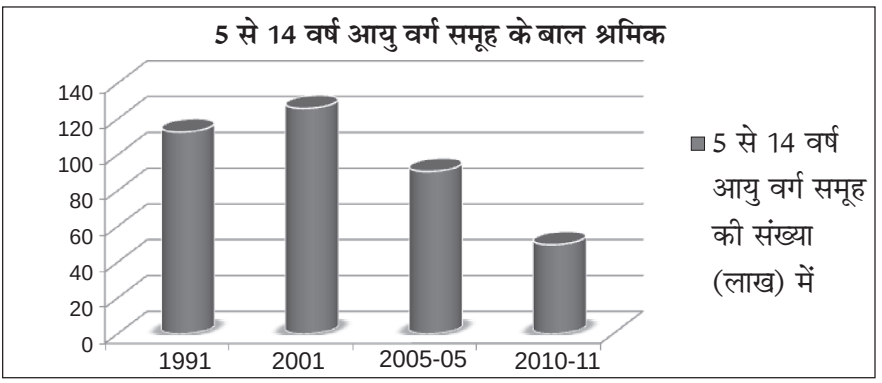

मध्य प्रदेश में 5 से 14 आयु वर्ग समूह के कार्यशील बच्चों की लैंगिक और सामजिक समूह की स्थिति इस प्रकार है –

ग्राफ-3

मध्य प्रदेश में 5 से 14 आयु वर्ग समूह के कार्यशील बच्चों की लैंगिक और सामजिक समूह आंकड़ों का रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुतीकरण

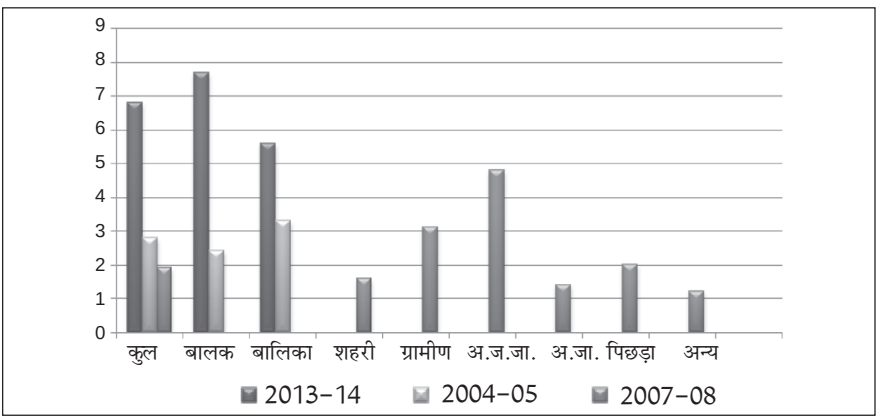

स्रोत: मानव विकास रिपोर्ट-2011

सरकार ने देश में बाल श्रम उन्मूलन के लिए विभिन्न जन कल्याणकारी योजनाओं को लागू किया और लाखों बच्चों को बाल मजदूरी करने से रोका और बाल श्रम से छुड़ाए गए बच्चों के पुनर्वास के लिए श्रम और रोजगार मंत्रालय ने महानगरों सहित देश के 66 जिलों में राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना को लागू कर बाल श्रम से छुड़ाए गए बच्चों को विशेष विद्यालयों में भर्ती कर उन्हें संपर्क शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, पोषण भत्ता और स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाएं प्रदान की ताकि उन्हें औपचारिक शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ा जा सके। वर्तमान समय में देश में 7311 विशेष विद्यालय इस दिशा में कार्य कर रहे है।

बेसहारा बच्चों के लिए महिला और बाल विकास मंत्रालय समेकित बाल संरक्षण योजना के माध्यम से आश्रय एवं रखरखाव की व्यवस्था प्रदान करता है तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के विद्यालयों को मध्यान्ह भोजन तथा सर्व शिक्षा अभियान के अधीन शिक्षक प्रशिक्षण, पुस्तकें आदि उपलब्ध कराता है और राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के विद्यार्थियों को औपचारिक शिक्षा प्रणाली की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य करता है।

राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत चलाई गई 76 प्रायोजनाओं के द्वारा 10,50,000 विद्यार्थियों को जोड़ा गया जिनमें से 10,5000 विद्यार्थियों का विशेष विद्यालयों में नामांकन कर उनका पुनर्वास का कार्य प्रारम्भ किया।[4] सर्व शिक्षा अभियान द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार मध्यप्रदेश के वर्ष 2005-06 में 4,72,242 तथा 2006-07 में 2,96,979 एवं चालू वर्ष में 71,000 बाल श्रमिक विद्यालय की परिधि से बाहर है।[5]

केंद्र सरकार ने सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के दौरान 14 अगस्त 1987 को राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना प्रारम्भ की। इस परियोजना के माध्यम से सम्पूर्ण देश में कुल 8,95,529 बाल श्रमिक बच्चों को समाज एवं शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ा गया है, जिसमें मध्यप्रदेश राज्य के 59,899 बच्चे भी शामिल है।

मध्यप्रदेश राज्य में विगत तीन वर्षों में वर्ष 2011 में 9,692, वर्ष 2012 में 13,344 एवं वर्ष 2013 में 17,589 बच्चों को मुख्य धारा से जोड़ा गया।[6]

मध्यप्रदेश के 5 जिलों के लिए प्रस्तावित 138 विशेष विद्यालयों में से 87 विशेष विद्यालयों के माध्यम से 6524 बाल श्रमिक बच्चों को शिक्षा प्रणाली से जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है।[7] इस योजना के तहत मंदसौर जिले में बाल श्रमिक विद्यालयों की

4. http://works.bepress.com/pankaj_singh/4
5. ssa.nic.in /scheme
6. s children mainstramed under nclp-5028a2e60f881
7. http://works.bepress.com/pankaj_singh/4

ग्राफ-4

आंकड़ों का रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुतीकरण

समाज की मुख्य धारा से जुड़े बाल श्रमिको की संख्या

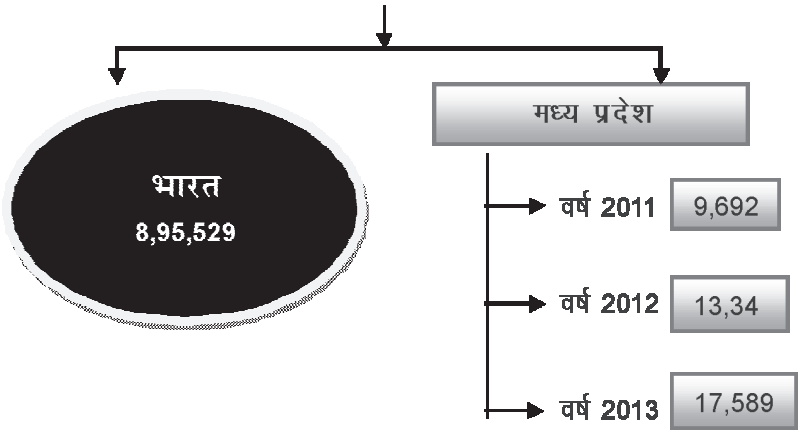

स्थापना के लिए बाल श्रम परियोजना विभाग को 53 लाख 90 हजार रुपये का सालाना बजट जिले में बाल श्रमिक विद्यालयों की स्थापना के लिए प्रदान किया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य जिले को बाल श्रमिक से मुक्त कराना था। अत: जिले में विशेष बाल श्रमिक विद्यालय इस उद्देश्य को लेकर खोले गए की बच्चे स्लेट पैन्सिल के कारखानों या खानों में काम या मजदूरी करने के बजाय बेहतर ढंग से शिक्षा प्राप्त करे और इन विद्यालयों को संचालित करने की जिम्मेदारी स्वयं सेवी संगठनों (एन.जी.ओ.) को सौंपी गयी ।

राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत वर्ष 1988-89 में कुल 04 (चार) विद्यालयों की स्थापना की गयी जिसमें 209 विद्यार्थी नामांकित थे, आज 26 वर्षों में 14 विद्यालयों में 867 विद्यार्थी अध्ययनरत हैं।[8] मंदसौर जिले में संचालित विभिन्न विद्यालयों में वर्ष 1988-89 से 2013-14 तक 5069 बच्चों को नामांकित किया गया, जिसमें से 2900 बच्चे औपचारिक शिक्षा की मुख्यधारा में शामिल हुए हैं, जबकि 232 विद्यार्थी विद्यालयीन तीन वर्षीय अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही औपचारिक शिक्षा की मुख्यधारा में शामिल हो गए।

इन 26 वर्षों की अवधि के दौरान इस परियोजना से लाभान्वित बच्चों संबंधी वर्षवार जानकारी को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है –

विगत वर्षों में मध्य प्रदेश के चयनित 17 जिलों में से मंदसौर जिले को वर्ष 2012-13 में 48,05,000 एवं वर्ष 2013-14 में 30,00,000 रुपये की राशि जारी की गयी। इन जिलों

[8] कार्यालय बालश्रम परियोजना अधिकारी मदसौर (म.प्र.)

तालिका-2
शिक्षा की मुख्यधारा में शामिल मंदसौर जिले के बाल श्रमिक विद्यार्थियों की वर्ष वार संख्या

वर्ष	स्वीकृत छात्रों की संख्या	स्वीकृत विद्यालय	विद्यालय में छात्रों की संख्या	नामांकित छात्रों की संख्या	विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों की संख्या	परियोजना में तीन वर्ष पूर्ण होने से पूर्व मुख्यधारा में शामिल छात्रों की संख्या	परियोजना में तीन वर्ष पूर्ण करने वाले छात्रों की संख्या	परियोजना में तीन वर्ष पूर्ण कर मुख्यधारा में शामिल छात्रों की संख्या
1988-89	200	4	209	209	26	12	0	0
1989-90	200	4	239	60	38	4	0	0
1990-91	600	8	607	418	67	12	0	0
1991-92	600	8	575	47	71	26	34	20
1992-93	600	8	550	106	50	21	87	70
1993-94	600	8	513	121	29	10	85	68
1994-95	600	8	548	151	31	13	141	114
1995-96	600	8	663	300	35	5	141	127
1996-97	600	8	489	7	18	4	76	61
1997-98	0	4	532	141	23	5	89	75
1998-99	400	4	418	1	28	3	47	33
1999-00	400	4	340	0	14	0	39	30
2000-01	400	4	456	169	18	0	69	56
2001-02	400	4	482	113	14	0	54	40
2002-03	400	4	469	55	42	0	62	42
2003-04	400	4	390	25	47	0	68	35
2004-05	400	4	318	62	17	0	84	84
2005-06	900	14	881	647	67	60	93	93
2006-07	900	14	819	309	116	5	112	112
2007-08	900	14	900	223	60	0	548	548
2008-09	900	14	867	518	3	0	212	212
2009-10	900	14	858	228	25	8	222	197
2010-11	900	14	900	307	35	0	477	410
2011-12	700	14	779	356	27	44	121	102
2012-13	700	14	781	194	19	0	189	162
2013-14	900	14	867	294	32	0	228	209
	कुल			5069	952	232	3278	2900

स्रोत: कार्यालय बाल श्रम परियोजना अधिकारी, मंदसौर (म.प्र.)

ग्राफ-5

बाल श्रमिकों के शिक्षा संबंधी कुल आंकड़ों का चित्र द्वारा प्रस्तुतिकरण

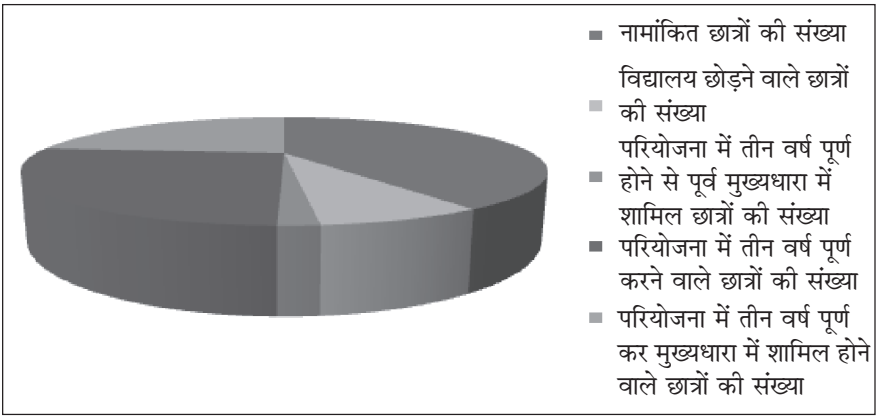

स्रोत – कार्यालय बाल श्रम परियोजना अधिकारी, मंदसौर (म.प्र.)

में राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन परियोजना का संचालन कर 59,012 बाल श्रमिकों का पुनर्वास किया जाना है। वर्तमान में मंदसौर जिले में 6 (छः) गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) इन विद्यालयों का संचालन कर रहे हैं, जिन्हें शिक्षण व्यवस्था का संचालन, शिक्षकों का वेतन, छात्रवृत्ति, व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षण सामग्री के व्यय हेतु 3 लाख 20 हजार रुपये सालाना प्रत्येक विद्यालय हेतु विभाग द्वारा प्रदान किये जाते है।

10वीं योजना में प्रत्येक जिले को बाल श्रमिकों के सर्वे के लिए 2.75 लाख रुपये, नई पीढ़ी एवं अभिभावकों की जागरूकता के लिए 1.25 लाख रुपये प्रतिवर्ष प्रदान किये गए।

पाठ्यक्रम एवं अवधि

इस परियोजना के अंतर्गत चलाए जाने वाले विशेष विद्यालयों का पाठ्यक्रम भी विशिष्ट होता है जिसकी अवधि तीन वर्षीय होती है, इस तीन वर्षीय अवधि में ही बच्चे कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन विद्यालयों में बच्चे न सिर्फ बुनियादी शिक्षा हासिल करते हैं बल्कि उन्हें उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है जैसे-सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, मेहंदी, चित्रकला इलेक्ट्रिक कार्य, बुक बाइंडिंग, चेयर कुसिंग आदि। तीन वर्ष की विद्यालयी अवधि सफलतापूर्वक पूर्ण करने के पश्चात् अथवा अवधि पूर्व शिक्षण योग्यता प्राप्त कर लेने पर इन्हें औपचारिक शिक्षा की मुख्यधारा में शामिल कर दिया जाता है, जहाँ इन्हें कक्षा 6 में प्रवेश मिल जाता है।

विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों की वर्तमान स्थिति

विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के संचालन की यह योजना प्रारम्भ होने के कुछ वर्षों तक तो ठीक प्रकार से चली लेकिन पिछले कुछ वर्षों से विभाग द्वारा एन.जी.ओ. को निर्धारित राशि का समय पर भुगतान नहीं किये जाने से अधिकांश एन.जी.ओ. आर्थिक परेशानी से जूझ रहे हैं। आज इन विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों का यह हाल है कि अधिकांश विद्यालय किराये के भवनों में संचालित हो रहे हैं, जिनमें प्रशिक्षित और पर्याप्त शिक्षकों का पूर्णतया अभाव है। विद्यालयों में बच्चों के बैठने के लिए पर्याप्त स्थान, कक्षा–कक्ष, फर्नीचर आदि मूलभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं है और ना ही शुद्ध पेयजल व बालक और बालिकाओं के लिए पृथक शौचालय की व्यवस्था है। विद्यालय में व्याप्त विभिन्न अव्यवस्थाओं के कारण शिक्षकों का पढ़ाने और छात्रों का भी पढ़ने में मन नहीं लगता है। आर्थिक तंगी के कारण एन.जी.ओ. विद्यालय भवन का किराया और बिजली का बिल भी समय पर जमा नहीं करवा पा रहे है। शिक्षकों को भी समय पर वेतन नहीं मिलता है तथा विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति की राशि का भुगतान भी समय पर नहीं किया जाता है। अधिकांश समय शिक्षक पढ़ाने की मात्र औपचारिकता ही निभाते हैं क्योंकि उन्हें नाममात्र का वेतन प्राप्त होता है। इसका प्रमुख कारण यह है की इन विद्यालयों की मानिटरिंग भी ठीक प्रकार से नहीं की जाती है। अफसरशाही और क्रियान्वयन एजेंसिया इन योजनाओं को पूर्ण रूप से कार्य नहीं करने देती हैं। एक अन्य कारण यह भी है की सामान्य विद्यालयों में शामिल होने के बाद इन बच्चों को मिलने वाली वित्तीय सहायता बंद कर दी जाती जिसके कारण उनकी शैक्षिक उपलब्धि और अकादमिक प्रदर्शन नकारात्मक हो जाता है। गैर–सरकारी संगठन या स्थानीय निकायों द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों के बाद भी कई बच्चे आज भी बाल मजदूर की जिन्दगी जीने को मजबूर है। अधिकतर विद्यालय भवनों में मूलभूत सुविधाएँ व शिक्षण का अनुकूल वातावरण उपलब्ध न होने पर भी विद्यार्थी अध्ययन करते हैं।

उचित बैठक व्यवस्था, टेबल, पर्याप्त रोशनी व पंखों की कमी तथा प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव एवं कक्षा का वातावरण शिक्षण के अनुकूल न होने के बावजूद भी ये बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। विद्यार्थियों द्वारा निर्मित खिलौने, चित्रकला, मेहंदी कार्य, व सिलाई कार्य को देखने से यह प्रतीत होता है कि इन विद्यार्थियों की सृजनात्मक व कलात्मक क्षमता सामान्य विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से किसी भी स्थिति में कमतर नहीं है, केवल इन्हें और अधिक प्रोत्साहन और अवसर उपलब्ध करने की आवश्यकता हैं।

इन विद्यालयों में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के कारण ही विद्यार्थियों की संख्या में कमी एवं विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं गुणवत्ता में गिरावट आयी है। ऐसी दशा में गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) द्वारा संचालित इन विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों, दक्षता एवं गुणवत्ता का पता लगाने के लिए उनकी शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है।

शोध का शीर्षक: प्रस्तुत शोध अध्ययन का शीर्षक निम्नवत है -

''शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के संदर्भ में मन्दसौर जिले के विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन''

शोध प्रश्न- प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु निम्न शोध प्रश्नों का निर्धारण किया गया है।

1) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति ठीक नहीं होने के कौन –कौन से कारक हैं?
2) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति के प्रति संबंधित शेयरधारकों (स्टेकहोल्डर्स) के अभिमत क्या हैं?
3) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति को बेहतर बनाने हेतु सुझाव क्या होंगे?

शोध उद्देश्य: प्रस्तुत शोध अध्ययन के शोध प्रश्नों के समाधान हेतु निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है -

1) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति का पता लगाना।
2) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति के कारणों को जानने हेतु संबंधित शेयरधारकों (स्टेकहोल्डर्स) के अभिमतों का गुणात्मक विश्लेषण करना।
3) बाल श्रमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति को बेहतर बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि

शोध विधि: प्रस्तुत लघु शोध अध्ययन के लिए 'केस अध्ययन' विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्शन विधि: शोध अध्ययन के लिए मध्य प्रदेश राज्य के मन्दसौर जिले के 8 बाल

श्रमिक विद्यालयों एवं इन विद्यालयों में अध्ययनरत 160 विद्याथियों तथा विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति की दशा व दिशा संबंधी अभिमत जानने हेतु 10 संचालक/सदस्यों, 25 शिक्षकों तथा 20 अभिभावकों का यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग कर न्यादर्श के रूप में चयन किया गया।

शोध क्षेत्र एवं सीमांकन: शोध अध्ययन में मध्यप्रदेश राज्य के मंदसौर जिले के 8 बाल श्रमिक विद्यालयों एवं इन विद्यालयों में अध्ययनरत 160 विद्याथियों को ही शोध अध्ययन में शामिल किया गया।

शोध उपकरण: अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन हेतु विद्यालय संचालकों के लिए साक्षात्कार प्रपत्र, अभिभावकों एवं शिक्षकों के लिए अलग-अलग प्रश्नावली का निर्माण कर प्रयोग किया गया एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति (दक्षता) की जाँच हेतु उन्हें पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों पर आधारित स्व निर्मित प्रश्न-पत्र का उपयोग किया।

प्रदत्तों का संग्रहण: प्रस्तुत अध्ययन पूर्णतया प्राथमिक आंकड़ों के संग्रहण के आधार पर किया गया। जिसमें आंकड़ों का संग्रहण मंदसौर जिले के बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों और विद्यालय संचालकों के माध्यम से संरचित प्रश्नावली/अनुसूची व साक्षात्कार और विभिन्न विषयों (हिंदी, सामान्य ज्ञान, गणित एवं पर्यावरण) पर आधारित स्वनिर्मित प्रश्न-पत्रों की सहायता से किया गया।

प्रक्रिया: शोध अध्ययन के लिए मध्यप्रदेश राज्य के मंदसौर जिले के 6 (छ:) गैर-सरकारी संगठनों द्वारा संचालित सभी 14 बाल श्रमिक विद्यालयों की सूची बनायी गयी। समस्त विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 1 से 5 तक के लगभग 700 बालक एवं बालिकाओं, 70 शिक्षकों और 10 विद्यालय संचालकों/सदस्यों को समग्र जनसंख्या माना गया। इन विद्यालयों में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं में से प्रत्येक विद्यालय के कक्षा 3 से 5 तक के 10 बालक और 10 बालिकाओं तथा 10 संचालक/सदस्यों, 25 शिक्षकों तथा 20 अभिभावकों का यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग कर न्यादर्श के रूप में चयन किया गया। शिक्षकों, अभिभावकों और विद्यालय संचालकों के लिये संरचित प्रश्नावली/अनुसूची व साक्षात्कार का आयोजन किया गया और विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति (दक्षता) एवं शैक्षिक उपलब्धि के अध्ययन के लिए शोधकर्ता द्वारा विभिन्न विषयों (हिंदी, सामान्य ज्ञान, गणित एवं पर्यावरण) पर आधारित स्वनिर्मित प्रश्न-पत्रों का प्रयोग किया गया। प्रश्न-पत्रों के मूल्यांकन से प्राप्त अव्यवस्थित आंकड़ों को सुबोध एवं ग्राह्य बनाने के लिए अपेक्षित सांखिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। तत्पश्चात आंकड़ों को तालिकाबद्ध एवं सांखिकीय विश्लेषण कर शोध के परिणामों की विवेचना की गयी।

प्रदत्तों का रेखाचित्र के द्वारा विश्लेषण एवं विवेचन

शोध अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों का रेखाचित्र के द्वारा विश्लेषण एवं विवेचन इस प्रकार किया गया है।

ग्राफ-6

कक्षा 3 के बालक एवं बालिकाओं के सभी विषयों के प्राप्तांकों का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

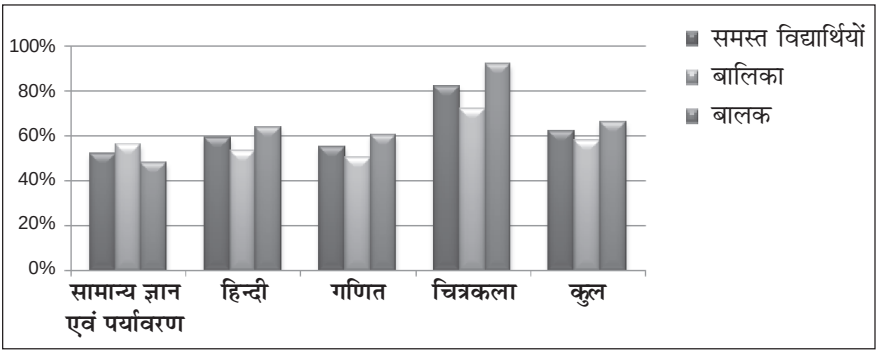

उपरोक्त ग्राफ-6 में दर्शाए कक्षा-3 के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का विवेचन इस प्रकार है-

1) समस्त विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान एवं पर्यावरण के प्रश्नों के मूल्यांकन से प्राप्त प्राप्तांकों का प्रतिशत 52 है। जबकि पृथक रूप में बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 56 व बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 48 ही है। प्रश्नों के मूल्यांकन से प्राप्त आंकड़ों से विदित होता है कि बच्चों का इन विषयों का ज्ञान सामान्य स्तर का है। पर्याप्त और उचित मार्गदर्शन प्रदान कर विद्यार्थियों के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

2) समस्त विद्यार्थियों के हिन्दी विषय के प्राप्तांकों का प्रतिशत 59 है तथा बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 53 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 64 है। प्राप्तांकों के आधार पर कहा जा सकता है की हिंदी भाषा के शब्दों, वाक्यों और व्याकरण के प्रति रुचि जागृत कर उनकी क्षमता में और वृद्धि की जा सकती है।

3) समस्त विद्यार्थियों के गणित के प्राप्तांकों का प्रतिशत 55 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 50 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 60 है। प्राप्तांकों से यह निष्कर्ष निकलता है की सामान्य गणित (जोड़, घटाव व अंकों) संबंधी प्रश्नों के निरंतर अभ्यास से विद्यार्थियों की गणितीय प्रश्नों को हल करने की क्षमता विकसित की जा सकती है।

4) समस्त विद्यार्थियों के चित्रकला के प्राप्तांकों का प्रतिशत 82 है। बालिकाओं–बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 72 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 92 है। प्राप्तांकों से यह निष्कर्ष निकलता है की कक्षा 3 के विद्यार्थियों में सृजनात्मकता अधिक है।

ग्राफ–7

कक्षा 4 के बालक एवं बालिकाओं के सभी विषयों के प्राप्तांकों का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

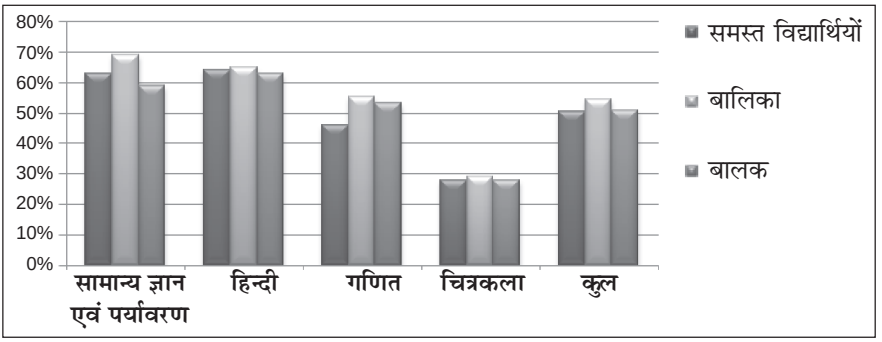

उपरोक्त ग्राफ–7 में दर्शाए कक्षा 4 के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का विवेचन इस प्रकार हैं

1) सामान्य ज्ञान एवं पर्यावरण विषय के प्रश्नों के मूल्यांकन से प्राप्त समस्त विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 63 है। जबकि पृथक रूप में बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 69 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 59 ही है। प्राप्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है विद्यार्थियों में पर्यावरण और सामान्य ज्ञान की जानकारी सामान्य से अधिक है।

2) समस्त विद्यार्थियों के हिन्दी विषय के प्राप्तांकों का प्रतिशत 64 है तथा बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 65 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 63 है। प्राप्त परिणाम के आधार पर कहा जा सकता है की विद्यार्थियों की हिन्दी विषय में रुचि है और वे हिन्दी के शब्दों,वाक्यों और व्याकरण की अच्छी जानकारी रखते हैं।

3) समस्त विद्यार्थियों के गणित के प्राप्तांकों का प्रतिशत 46 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 55 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 53 है। प्राप्तांकों से यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थी सामान्य गणित के जोड़, घटाव व अंकों संबंधी जानकारी सामान्य से अधिक है परन्तु निरन्तर अभ्यास कर प्राप्तांकों में बढ़ोतरी की जा सकती है।

4) समस्त विद्यार्थियों के चित्रकला के प्राप्तांकों का प्रतिशत 28 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों

का प्रतिशत 29 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 28 है। प्राप्तांकों से यह निष्कर्ष निकलता है कक्षा 4 के विद्यार्थी में सृजनशीलता का स्तर निम्न है या उनके पास सामग्री का अभाव है, इसलिए वे चित्रकला में कम रुचि रखते हैं।

ग्राफ-8

कक्षा 5 के बालक एवं बालिकाओं के सभी विषयों के प्राप्तांकों का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

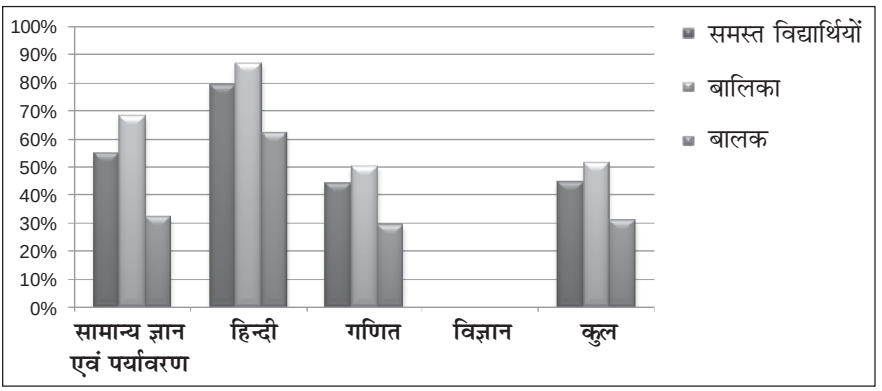

उपरोक्त ग्राफ-8 में दर्शाए कक्षा 5 के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का विवेचन इस प्रकार है–

1. समस्त विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान एवं पर्यावरण के प्रश्न-पत्र के मूल्यांकन से प्राप्त प्राप्तांकों का प्रतिशत 55 है। जबकि बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 68 है, परन्तु बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 32 ही है। अत: पर्याप्त निर्देशन देकर बालकों के ज्ञान में भी बढ़ोतरी किया जाना संभव है।
2. समस्त विद्यार्थियों के हिन्दी विषय के प्राप्तांकों का प्रतिशत 79 है तथा बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 87 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 62 है। प्राप्तांकों के परिणाम से यह विदित होता है की विद्यार्थियों की हिन्दी विषय में रुचि अधिक है और वे हिन्दी के शब्दों, वाक्यों और व्याकरण का पर्याप्त ज्ञान व जानकारी रखते हैं।
3. समस्त विद्यार्थियों के गणित के प्राप्तांकों का प्रतिशत 44 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 50 है जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 29 है। प्राप्तांकों से यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों का गणितीय ज्ञान निम्न से कम स्तर का है अत: सामान्य गणित (जोड़, घटाव, गुणा व भाग) संबंधी प्रश्नों के निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है।
4. समस्त विद्यार्थियों और पृथक रूप में बालिकाओं एवं बालकों के विज्ञान के प्राप्तांकों

का प्रतिशत भी शून्य (0) है। इससे यह प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों की विज्ञान में रुचि कम व निम्न स्तर की है। इसलिए उन्हें विज्ञान की दैनिक जीवन में आवश्यकता एवं महत्व की जानकारी देकर विषय ज्ञान में वृद्धि किया जाना संभव है।

ग्राफ-9

समस्त कक्षाओं के बालक एवं बालिकाओं के सभी विषयों के प्राप्तांकों का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

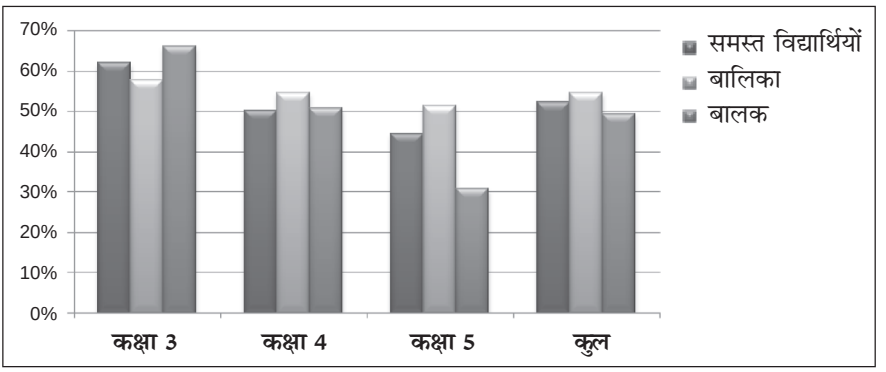

उपरोक्त रेखाचित्र में दर्शाए तीनों कक्षाओं के बालकों एवं बालिकाओं विद्यार्थियों के समस्त विषयों के प्राप्तांकों का विवेचन इस प्रकार हैं -

1. कक्षा 3 के समस्त विद्यार्थियों के सभी विषयों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 62 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 57.75 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 66 है। सभी विषयों के प्राप्तांकों से प्राप्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कक्षा के विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर सामान्य से अधिक हैं। यदि इन्हें अधिक समय विषय संबंधी अध्ययन कराया जाए तो उनकी शैक्षिक उपलब्धियों के स्तर में वृद्धि की जा सकती है।
2. कक्षा 4 के समस्त विद्यार्थियों के सभी विषयों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 50.25 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 54.50 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 50.75 है। सभी विषयों के प्राप्तांकों से प्राप्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है की कक्षा के विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर सामान्य है। अतिरिक्त समय और कक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर में बढ़ोतरी की जा सकती है।
3. कक्षा 5 के समस्त विद्यार्थियों के सभी विषयों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 44.50 है। बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 51.25 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का

प्रतिशत 30.75 है। सभी विषयों के प्राप्तांकों से प्राप्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है की कक्षा के विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर सामान्य से कम है। अतिरिक्त समय और अतिरिक्त कक्षाएं तथा व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक विद्यार्थी पर ध्यान देकर उनकी शैक्षिक उपलब्धियों एवं गुणवत्ता स्तर में बढ़ोतरी की जा सकती है।

4. इसी प्रकार तीनों कक्षाओं के समस्त विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का कुल प्रतिशत 52.25 है, बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 54.50 है, जबकि बालकों के प्राप्तांकों का प्रतिशत 49.17 है। सभी विषयों एवं सभी कक्षाओं के प्राप्तांकों से प्राप्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है की समस्त कक्षाओं के विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर सामान्य है। अर्थात विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं गुणवत्ता में बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है ताकि यें बच्चे सामान्य विद्यार्थियों के साथ माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त कर सकें।

हितधारकों (स्टेकहोल्डर्स) के अभिमतों का विवेचन

बाल श्रमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर को जानने और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि और गुणवत्ता में वृद्धि के लिए संबंधित अंशधारकों के अभिमतों को जानना भी बहुत आवश्यक है अत: शोधकर्ता ने विषय से जुड़े सभी अंशधारकों/हितग्राहियों के मतों की विवेचना की, जो इस प्रकार हैं –

स्वयं सेवी संगठन (संचालक/प्रतिनिधि) संचालकों के अभिमतानुसार – समस्त स्वयं सेवी संगठनों के संचालकों ने यह स्वीकार किया कि वे शिक्षकों के प्रशिक्षण की योजना बनाते है। 50% संचालकों ने ही यह माना की उनके विद्यालय का वातावरण बाल श्रमिक विद्यार्थियों के शिक्षण के अनुकूल है। जबकि 50% से कम विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या के अनुरूप बैठने के लिए पर्याप्त स्थान, कक्षा कक्ष व फर्नीचर, शैक्षिक वातावरण, स्वच्छ पेयजल और पृथक शौचालय उपलब्ध है। इसका प्रमुख कारण यह है कि 50% से अधिक विद्यालयों का संचालन किराये के भवनों में किया जाता है। सभी संस्थाओं द्वारा बाल श्रमिक बच्चों का आकलन कर अनामांकित बच्चों को विद्यालय एवं शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। परन्तु किसी भी संस्था द्वारा विभिन्न विकलांगतायुक्त बच्चों को इन विशेष विद्यालय में प्रवेश नहीं दिया जाता है। शत प्रतिशत संस्थाओं ने यह भी स्वीकार किया कि विद्यार्थियों के लिए गणवेश अवश्य होना चाहिए। योजना से मिलने वाली राशि को 100% स्वयं सेवी संगठनों के संचालकों ने अपर्याप्त एवं समय पर प्राप्त ना होना बताया। बाल श्रमिक बालकों और बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने का कारणों में 100% ने रोजगार व अशिक्षा, 80% ने आवास, गरीबी और परिवार की आर्थिक स्थिति को एवं 40% ने माता–पिता में शिक्षा के प्रति जागरूकता में कमी और छात्रवृत्ति को मानते हैं।

शिक्षकों के अभिमतानुसार– शत प्रतिशत शिक्षक अपने कार्य से पूर्णतया संतुष्ट हैं। जबकि 65% शिक्षक कार्य से मिलने वाले वेतन से असंतुष्ट है। 100% शिक्षकों ने स्वीकार किया की उन्हें वेतन समय पर नहीं मिलता है। शिक्षकों ने बाल श्रमिक विद्यार्थियों की शिक्षा में प्रमुख बाधक तत्व में 50% ने रोजगार व 80% ने अभिभावकों का अशिक्षित होना, 40% ने गरीबी और परिवार की आर्थिक स्थिति को जिम्मेदार माना। 60% शिक्षकों ने योजना से मिलने वाली बजट राशि की वृद्धि को अनिवार्य बताया।

अभिभावकों के अभिमतानुसार– स्लेट पेंसिल कारखानों से जुड़े परिवार का शिक्षा के प्रति जागरूकता कम होने का प्रमुख कारण परिवारों के सदस्यों का निरक्षर होना है। क्योंकि 20% से कम अभिभावक प्राथमिक स्तर एवं 80% से अधिक अशिक्षित होने से शिक्षा के प्रति इनमें उदासीनता दिखाई देती है। परिवार की वर्तमान आर्थिक स्थिति और गरीबी के हालातों में परिवार के सदस्यों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अभिभावक उनके कार्यों में बच्चों का सहयोग लेते हैं या श्रमिक के रूप में उनसे कार्य कराते हैं। उनका मानना है की प्राप्त मजदूरी से परिवार की आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति हो जाती हैं। अभिभावक द्वारा शिक्षा के स्थान पर मजदूरी को अधिक महत्व दिया जाता हैं। जिसका सीधा प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं उपलब्धियों पर पड़ रहा है।

विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों की वर्तमान स्थिति के संबंध में अधिकारी व संचालको के अभिमत

''शासन से बाल श्रम परियोजना विभाग मंदसौर को पिछले दो वर्षों से बाल श्रमिकों के सर्वे, अभिभावकों की जागरूकता एवं शिक्षक प्रशिक्षण की राशि प्राप्त नहीं हुई है। उनके अनुसार सरकार द्वारा एन.जी.ओ. को विद्यालय संचालन के लिए दी जाने वाली फण्ड की राशि तथा भवन किराया में बढ़ोतरी की जानी चाहिए तथा साथ ही राशि का भुगतान निर्धारित समय पर किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को गणवेश का वितरण भी अवश्य रूप से किया जाना चाहिए। बजट, सर्वे एवं शिक्षकों की कमी, बजट की राशि उपलब्ध ना होंने तथा विद्यार्थियों के अभाव में कुछ जिलो में परियोजना ने काम करना बंद कर दिया है।''

श्री अनिल भट्ट – बाल श्रम परियोजना अधिकारी, जिला मंदसौर (म.प्र.)

''पदेन अध्यक्ष जिला कलेक्टर के साथ प्रत्येक चार माह में बैठक होनी चाहिए। परन्तु पिछलें तीन वर्षों से विभाग के साथ एन.जी.ओ. की बैठक नहीं हुई है। एन. जी.ओ. न लाभ न हानि पर कार्य करते हैं, उन्हें विद्यालय संचालन की तय राशि समय पर नहीं मिलती है। विभाग के साथ किये प्रस्ताव में तीन माह का फण्ड

अग्रिम मिलना तय था परन्तु आज हालत यह है की पिछले वर्ष का 11 माह और इस वर्ष का 6 माह का (कुल 17 माह) का फण्ड प्राप्त नहीं हुआ है, ना हीं पुस्तकें एवं छात्रवृत्ति की पूर्ण राशि मिली है। हम स्टेशनरी एवं शिक्षकों का वेतन और भवन किराया भी नहीं चुका पा रहे हैं। परियोजना का मुख्य लक्ष्य गरीबी और अशिक्षा पर आक्रमण करना था। इस योजना में व्याप्त कमियों को दूर करने के लिए योजना में नीतिगत परिवर्तन करने की जरुरत है। इसके पूर्ण रूप से सफल न होने का प्रमुख कारण अभिभावकों को इन्द्रा आवास, मनरेगा में कार्य, गरीबी रेखा का कार्ड एवं विद्यालयों में पूर्ण प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है।''

महेश चंद्र दुबे (संचालक- अम्बेडकर बाल कल्याण संस्था, मंदसौर)

निष्कर्ष : शोध परिणाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विशेष बाल श्रमिक विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति सामान्य स्तर से भी निम्न है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं गुणवत्ता अन्य विद्यार्थियों के ही समान है। इन विद्यालयों में अध्ययनरत बालक व बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति भी समान है। बाल श्रमिक विद्यालयों की शिक्षण अवधि पूरी करने के पश्चात विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा में शामिल होने की शैक्षणिक योग्यता प्राप्त कर लेता है।

सुझाव : शोध परिणाम के आधार एवं विद्यालयों संचालकों, शिक्षकों एवं अभिभावकों के मतानुसार विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों कि शैक्षिक स्थिति में सुधार हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. अभिभावकों को स्थानीय रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। रोजगार के विकल्प की सीमितता होने के कारण ये लोग जीवनयापन के साधनों से (आवास, राशनकार्ड, बीमा आदि) से वंचित हैं। रोजगार ना मिलने पर वे एक स्थान से दूसरे स्थान पलायन कर जाते हैं। फलस्वरूप उनके बच्चों/विद्यार्थियों को भी शिक्षा बीच में ही छोड़नी पड़ती हैं।
2. अभिभावकों की निरक्षरता दूर करने के लिए जन जागरण कार्यक्रम के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा जैसे अनेकों कार्यक्रमों को चलाया जाए, ताकि वे शिक्षा के महत्व को समझें और अपने बच्चों को बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने से स्वयं रोक सकें। अशिक्षित होने के कारण वे अपने श्रम का उचित मूल्याकंन करने में भी असफल रहते हैं।
3. श्रमिक वर्ग के परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव है। अत: विभागीय अधिकारियों तथा विद्यालय संचालकों, सदस्यों एवं शिक्षकों के माध्यम से अभिभावकों के लिए निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पास गणवेश का सर्वत्र अभाव है, अत: इस योजना के माध्यम से गणवेश अवश्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए, ताकि उन्हें देखकर अन्य बच्चे भी विद्यालय जाने को स्वयं प्रोत्साहित हो सकें।
5. विद्यालय संचालन करने वाले संगठनों को प्रदान किये जाने वाले स्थायी फण्ड की राशि में वृद्धि की जाए एवं छात्रवृत्ति की राशि, पुस्तकें एवं शिक्षण-सामग्री समय पर उपलब्ध कराई जाए।
6. बाल श्रम नीतियों में सुधार किया जाए क्योंकि वर्तमान प्रचलित नीतियों में अनेक प्रकार की कमियाँ हैं, अत: इनमें नीतिगत परिवर्तन एवं सुधार की बहुत जरूरत है।
7. अनिवार्य शिक्षा अधिनियम के प्रावधानों का पालन सुनिश्चित किया जाए तथा इसके साथ ही नवीन विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों की स्थापना भी की जानी चाहिए ताकि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित ना रहे, तथा साथ ही लक्ष्य से अधिक उपलब्ध विद्यार्थियों का प्रवेश सुनिश्चित किया जाए।
8. विद्यार्थियों को कौशल एवं रोजगारोन्मुखी तथा व्यावसायिक एवं तकनीकी आधारित शिक्षा प्रदान की जाए, ताकि उन्हें अधिक अवसरों के साथ स्थायी रोजगार प्राप्त हो सकें।
9. कारखानों के आसपास रहने वाले विकलांगतायुक्त बच्चों को भी इन विद्यालयों में प्रवेश दिया जाये, क्योंकि वे बच्चे अभी भी शिक्षा से अछूते हैं। मुख्यधारा में शामिल होने के बाद परिवार की आर्थिक स्थिति के कारण विद्यार्थी माता-पिता का कार्यों में सहयोग करना प्रारम्भ कर देते हैं या समय अभाव के कारण वे उच्चतर माध्यमिक स्तर पर आते-आते विद्यालय त्याग देते हैं। ऐसे विद्यार्थियों को पुन: विद्यालय से जोड़ने के प्रयास किए जाएँ।
10. विद्यालयों में सामूहिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये, साथ ही शिक्षकों और अभिभावकों को विषय विशेषज्ञ व्यक्तियों की सेवाएँ भी प्रदान की जाऐ।
11. परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया जाए एवं कारखानों या अन्य कार्य से हटाये गए बच्चों के पुनर्वास एवं शिक्षण की पूर्ण व्यवस्था की जाए।
12. बाल मजदूरों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाए तथा उन्हें विकास के समान अवसर भी उपलब्ध कराये जाएँ, ताकि वे सामाजिक कार्यों में शामिल होने की योग्यता हासिल कर सकें।
13. बाल श्रम कानूनों का पालन सख्ती से किया जाए तथा बाल श्रम कराने वाले नियोक्ताओं को कठोर दण्ड दिया जाएं।
14. बाल श्रमिकों के लिए राष्ट्रीय कल्याण कोष की स्थापना की जाए।

उपसंहार

साक्षर भारत एवं सर्व शिक्षा अभियान सहित शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के अन्तर्निहित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत संचालित विशेष बाल श्रमिक विद्यालय में व्याप्त समस्याओं को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। शोध अध्ययन और निष्कर्ष के आधार पर दिए गए सुझावों के आधार पर योजना में नीतिगत परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप न केवल बाल श्रम उन्मूलन होगा बल्कि प्रत्येक बाल श्रमिक बच्चे को शिक्षा की मुख्यधारा से भी जोड़ा जा सकेगा और विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों का शैक्षणिक उन्नयन होने से उनकी शैक्षणिक उपलब्धी स्तर में भी उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी देगा।

संदर्भ

श्रीवास्तव, मनीष कुमार (2007): *बाल श्रमिक एक सामाजिक अभिशाप,* कुरुक्षेत्र, नवम्बर, पृष्ठ 17–19

दुबे, शारदा एवं वाजपेयी, दुर्गा (2009): *बाल श्रम एवं मानव अधिकार. शोध समीक्षा और मूल्यांकन,* सितम्बर, पृष्ठ 74–76

शर्मा, सतीश कुमार (2009): *बाल मजदूरी–उन्मूलन श्रम सच्चाई,* योजना मई, पृष्ठ 42

गौतम, सुशील कुमार (2007): *बाल श्रम उन्मूलन हेतु सरकारी और गैर–सरकारी प्रयास,* कुरुक्षेत्र, नवम्बर

श्रीवास्तव, उदय शंकर (2009): *बाल श्रम एवं मानव अधिकार*. पृष्ठ 382

स्टेट रिपोर्ट ऑन चिल्ड्रन आफ मध्य प्रदेश–2012

रिपोर्ट ऑफ द मिनिस्ट्री ऑफ लेबर एंड इम्प्लायमेंट, गर्वमेंट आफ इंडिया

http://works-bepress-com/pankaj_singh/4

children mainstramed under nclp&5028a2e60f881

child labour – reference note/no- 10/RN/Ref-2013

ssa-nic-in /scheme

मल्होत्रा, आर. (2011). राइट टू एजुकेशन: फ्री एंड कम्पलसरी एजुकेशन फार ऑल दिल्ली: डीपीएस पब्लिकेशन

सूचना और प्रसारण मंत्रलय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

कौल, लोकेश: *शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली* – विकास पब्लिकेशन, दिल्ली (1998)

कपिल, एच. के.: *सांख्यिकी के मूल तत्व*– विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

शर्मा, आर.ए.: *शिक्षा अनुसन्धान* — आर.लाल बुक डिपो, मेरठ (2006)

कार्यालय – बाल श्रम परियोजना अधिकारी, मंदसौर (म.प्र.)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

बदलते परिदृश्य में उच्च शिक्षा का स्वरूप और विकास

कंचन शर्मा* एवं **दीपक शर्मा****

सारांश

विश्वभर में उभरते बदलावों के प्रमुख कारकों में नव उदारवादी अर्थव्यवस्था व भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने विश्व के लगभग सभी उच्च शिक्षा संस्थानों के स्वरूप को प्रभावित किया है। न केवल राज्य और विश्वविद्यालयों के मध्य के संबंधों बल्कि ज्ञान के स्वरूप प्रकृति में भी बदलाव देखने को मिल रहा है। इस लेख के माध्यम से भारत विशेष के संदर्भ में उच्च शिक्षा में आने वाले बदलावों पर प्रकाश डालने के साथ यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार बदलती अर्थव्यवस्था, उच्च शिक्षण संस्थानों की भूमिका व ज्ञान के रूप को प्रभावित करती है? क्या विश्वविद्यालयों को आज के युग में राज्य द्वारा पोषित संस्था के रूप में ही देखा जाना तर्क संगत है? क्या वास्तव में उच्च शिक्षा सम्पूर्ण समाज का हित करने वाली प्रक्रिया है या इसे भी अन्य संस्थाओं की भांति व्यक्ति विशेष के हितों की पूर्ति से जोड़ा जा सकता है? मन-मस्तिष्क में उभरे इन सभी सवालों की तलाश करने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

उच्च शिक्षा : भारत विशेष के संदर्भ में

भारत विशेष में उच्च शिक्षा के विकास का अध्ययन करने का जब आरंभ करते हैं तो दृष्टि नालंदा, तकक्षीला व वल्लभी जैसे अति-प्रसिद्ध संस्थानों तक जाती है, जिनका वर्णन अनेक बार हमारे ऐतिहासिक ग्रन्थों में किया गया है। माना जाता है कि इन संस्थानों की प्रसिद्धि मात्र भारतवर्ष तक ही नहीं थी बल्कि दूसरे देशों तक भी थी। इस प्रसिद्धि के फलस्वरूप ही अनेक देशों के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने भी आते थे, जिसकी चर्चा

*शोधार्थी, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मेग्नाथीज द्वारा भी की गई है। इन विश्वविद्यालयों के स्वरूप से भिन्न अन्य संस्थाओं पर चर्चा की जाए तो ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्थापित 'आधुनिक विश्वविद्यालय' की तस्वीर उभर कर आती है। तिलक (2013) वल्लभी, नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों को 'प्रथम पीढ़ी' के विश्वविद्यालयों का नाम देते है, वहीं ब्रिटिश शासन के अधीन 1856 के पश्चात स्थापित विश्वविद्यालयों को 'आधुनिक विश्वविद्यालय' के रूप में देखते हैं इस लेख को चर्चा की दृष्टि से 1856 के पश्चात स्थापित विश्वविद्यालयों के स्वरूप को आधार बना कर लिखा गया है।

आधुनिक विश्वविद्यालय का उदय व विस्तार

ब्रिटिश शासन के अधीन भारत में सबसे पहला विश्वविद्यालय 1857 में कलकत्ता में, तत्पश्चात बॉम्बे, मद्रास में स्थापित किया गया। इसके तीस वर्ष पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना की गई जो पहले म्योर कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ करता था। आजादी के समय भारत में लगभग 3 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 17 राज्य पोषित विश्वविद्यालय व लगभग 500 कालेज थे। उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्या समकालीन भारत में स्थापित उच्च शिक्षण संस्थाओं की संख्या की तुलना के लिहाज से काफी सीमित दिखाई देती है। ना केवल संख्या बल्कि विश्वविद्यालयों की भूमिका व स्वरूप को लेकर भी आज की संस्थाएं अपने अतीत के रूप से काफी बदल गई हैं। मसलन अंग्रेजी शासन में विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य मात्र 'मूल्यांकन' का था। जबकि आज की यह संस्थाएं ना केवल मूल्यांकन बल्कि शिक्षण व शोध के कार्यों को भी समेटे हुए हैं। चूंकि अंग्रेजी शासन द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयों की स्थापना से पूर्व अनेक समाज सुधारकों व धनवान लोगों ने यश व लोकहित के उद्देश्य से कालेजों की स्थापना की हुई थी। अत: इन विश्वविद्यालयों की एक अन्य विशेषता यह भी थी कि यह इस प्रकार निजी स्थापित कालेजों को मान्यता प्रदान करता था। विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्रदान किए जाने वाला कार्य व मूल्यांकन का कार्य आज भी विस्तृत रूप से किया जा रहा है। ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त भी कुछ विश्वविद्यालयों की स्थापना (अनेक समाज सुधारकों व धनवान लोगों ने यश या लोकहित के उद्देश्य से) की गई जैसे पूना में कर्वे द्वारा महिला विश्वविद्यालय की स्थापना, टेगौर द्वारा विश्व भारती विश्वविद्यालय की स्थापना इत्यादि।

भारत अपनी भौगोलिक विशेषताओं के चलते उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्थापना (विशेष रूप से विश्वविद्यालयों की स्थापना) की दृष्टि से काफी जटिल व असमान रहा है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सम्पूर्ण भारत वर्ष में एक समान शिक्षा प्रणाली का

प्रसार नहीं किया जा सका है। बरहाल, अपने ऐतिहासिक दृष्टि की तुलना में भारत ने आजादी के पश्चात उच्च शिक्षा के प्रसार में काफी उन्नति हासिल की है। यह उन्नति ना केवल उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि नामांकन दर, शिक्षण-अधिगम की गुणवत्ता व 'शोध' को व्यापक बनाने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। भारत में उच्च शिक्षा को व्यापक दृष्टि से समझने के लिए तालिका-1 की मदद ली जा सकती है। जिसके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि आज भारत में कितने विश्वविद्यालय और कालेज हैं?

तालिका-1

उच्च शिक्षा संस्थान : 2012-2013

विश्वविद्यालय	**संख्या**
केंद्रीय विश्वविद्यालय	42
राज्य विश्वविद्यालय	310
मानद विश्वविद्यालय	127
राज्य निजी विश्वविद्यालय	143
केंद्रीय मुक्त विश्वविद्यालय	1
राज्य मुक्त विश्वविद्यालय	13
राष्ट्रीय महत्व के संस्थान	68
राज्य लेजिसलेचर के अधीन संस्थान	5
अन्य	3
योग	**712**
कालेज	**36,671**

संस्थान	**संख्या**
डिप्लोमा स्तरीय तकनीकी	3541
पीजीडीएम	392
नर्सिंग डिप्लोमा	2674
डिप्लोमा टीचर्स	4706
मंत्रालय अधीन संस्थान	132
योग	**11,445**

स्रोत: एजुकेशनल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, भारत सरकार (मा.सं.वि.मं.) 2014

तालिका कि मदद से यह समझने में मदद मिलती है कि भारत ने उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थापना की दृष्टि से काफी प्रगति की है। जहां आजादी के समय भारत में मात्र लगभग 3 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 17 राज्य पोषित विश्वविद्यालय व लगभग 500 कालेज ही अस्तित्वान थे। वहीं 2013 के आंकड़ों के अनुसार आज 712 विश्वविद्यालय, 36,671 कालेज व 11,445 विषय विशेष से संबंधित संस्थाएं स्थापित हैं (Educational statistics at a glance)। संस्थाओं की बढ़ती यह संख्या इस ओर इशारा करती है कि भारत सरकार उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाले राष्ट्र-व्यापक हितों को लेकर काफी सक्रिय है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था व समस्याओं और समाधानों पर आज तक जीतने भी आयोगों व कमेटियों की स्थापना हुई है, सभी ने उच्च शिक्षा के महत्व पर बल दिया है व सीधे तौर पर इसे राष्ट्र के विकास से जोड़ा है। भारत में आजादी के पश्चात से ही प्रत्येक जाति व वर्ग में उच्च शिक्षा पाने की ललायता का ही यह प्रभाव है कि सरकारी व निजी दोनों संस्थाएं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उभरी मांग की पूर्ति करने का प्रयास कर रही हैं। हालांकि दोनों के प्रयास के पीछे छिपे उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं। बरहाल, यह समझा जाना आवश्यक है कि संस्थानों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी उस मांग को प्रकट करती है जो भारत के युवाओं द्वारा की जा रही है। अर्थात उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मात्र संस्थाओं में बढ़ोतरी ही नहीं हुई बल्कि बड़ी संख्या में छात्र-छात्राओं के नामांकन की दर में भी तेजी से इजाफा हो रहा है। आजादी के समय जो संख्या लगभग 1 लाख थी वहीं आज लगभग 15 मिलियन छात्र छात्राएँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। (देखें तालिका 2)।

तालिका-2

अखिल भारतीय विद्यार्थी नामांकन वृद्धि (1983-84 से 2004-05 तक)

वर्ष	कुल नामांकन	पूर्व वर्ष के सापेक्ष वृद्धि	प्रतिशत
1983-84	33,07,649	1,74,556	5.6
1984-85	34,04,096	96,447	2.9
1985-86	36,05,029	2,00,933	5.9
1986-87	37,57,158	1,52,129	4.2
1987-88	40,20,159	2,63,001	7.0
1988-89	42,85,489	2,65,330	6.6
1989-90	46,02,680	3,17,191	7.4

क्रमशः

1990–91	49,24,868	3,22,188	7.0
1991–92	52,65,886	3,41,018	6.9
1992–93	55,34,966	2,69,080	5.1
1993–94	58,17,249	2,82,283	5.1
1994–95	61,13,929	2,96,680	5.1
1995–96	65,74,005	4,60,076	7.5
1996–97	68,42,598	2,68,593	4.1
1997–98	72,60,418	4,17,820	6.1
1998–99	77,05,520	4,45,102	6.1
1999–2000	80,50,607	3,45,087	4.5
2000–2001	83,99,443	3,48,836	4.3
2001–2002*	88,21,095	4,21,652	5.0
2002–2003*	92,27,833	4,06,738	4.6
2003–2004**	100,09,137	7,81,304	8.5
2004–2005**	117,77,296	17,68,159	17.7

Source: University Grants Commission-2003 Annual Report 2002-03,

* Provisional

**Source: Government of India, 2007. Selected Educational Statistics 2004-2005

भारत में स्थापित उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्या व नामांकन स्तर में ही परिवर्तन देखने को नहीं मिलता बल्कि विश्वविद्यालयों की भूमिका में भी आज बड़ा बदलाव आया है। वे संस्थाएं जो मात्र मूल्यांकन अंग के रूप में मात्र मूल्यांकन करने के लिए स्थापित की गई थीं, वहाँ आज शिक्षण गतिविधियों व शोध अध्ययनों के लिए भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इस पर चर्चा करते हुए कृष्ण कुमार (2015) बताते हैं कि भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली में शामिल हालिया विशेषता (अपने उदय के समय इसमें यह शामिल नहीं था) 'शोध अध्ययन' पर जब चर्चा आरंभ की जाती है तो कुछ प्रश्न उठ खड़े होते हैं जैसे शोध कौन करवाए?, शोध पर होने वाला व्यय कौन खर्च करेगा? इन शोध अध्ययनों पर किसका मालिकाना अधिकार होगा इत्यादि? जैसे कि यह सभी को ज्ञात है कि 'शोध' एक लंबे समय तक चलने वाली महंगी प्रक्रिया है। इसके साथ ही कई शोध का अंतिम उत्पाद मूल्य

उसके अवसर मूल्य (opportunity cost) से काफी कम रहता है। इसके अतिरिक्त अंतिम उत्पाद के रूप में इसका मालिकाना हक शोधकर्ता के पास होने से यह निजी उत्पाद का रूप ले लेता है। ऐसे में यह प्रश्न मजबूती से उठ खड़ा होता है कि इस प्रक्रिया में समाज अपनी पूंजी क्यों लगाए? इस प्रकार जब उच्च शिक्षा में शामिल 'शोध' कार्य को सार्वजनिक कल्याण की आवाज बुलंद की जाती है तो वह एक भ्रामक धारणा को मजबूत करती है। जबकि प्रत्येक 'शोध' समाज के वर्ग विशेष के लिए ही उपयोगी होता है। इस कारण उस वर्ग विशेष का शोध विशेष में रुचि होने के कारण व्यय की अपेक्षा भी वहीं से की जानी चाहिए। इस प्रक्रिया के अतिरिक्त उच्च शिक्षा की दूसरी विशेषता 'ज्ञान का सैद्धांतिकरण' या ज्ञान का प्रकाशन ऐसी प्रक्रिया है जिससे उच्च शिक्षा एक लाभ-हानि की वस्तु के रूप में उभरती है। भारत में अन्य देशों की तुलना में प्रकाशन का स्तर काफी नीचे रहता है व पेटेंट कराने के मामले में भी भारत की स्थिति काफी खराब है (देखे पवन अग्रवाल)। उच्च शिक्षा का अंतिम उत्पाद वह ज्ञान होता है जिसका सैद्धांतिकरण किया जा चुका है। इसका सीधा संबंध पुस्तक प्रकाशन, लेख प्रकाशन व नई खोज को पेटेंट कराने से जुड़ा है। यह प्रक्रिया इस दृष्टि से लाभ- हानि के उस द्वार से जुड़ी है जिसका सीधा संबंध पूंजी आर्थिक लाभ से जुड़ा होता है। यहीं कारण है की विषय विशेष के जर्नल किताबों की तुलना में कम प्रकाशित होते हैं चूंकि उनके खरीददार सीमित होते हैं। इस प्रकार यह पूर्ण रूप से निजी पूंजी व्यय का मसला बन जाती है। वैश्वीकरण के युग व इंटरनेट के विकास ने इस उद्योग को और अधिक गति प्रदान की है। आज इंटरनेट से आप ऑनलाइन पेमेंट कर किसी भी देश के साहित्य का आनंद प्राप्त कर सकते है। इस दृष्टि से ज्ञान पूंजी से जुड़े मसले के रूप में उभरता है (कुमार एम. फिल. कक्षा संवाद)।

भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों की बदलती भूमिका पर लगातार बल दिया जा रहा है। उच्च शिक्षा पर संगठित सभी आयोगों द्वारा लगातार ये सिफारिशें प्रदान की जा रही है कि उच्च शिक्षा में शोधों के स्तर पर संख्या कि बढ़ोतरी के लिए विश्वविद्यालयों को उद्योगों से जोड़ा जाए। जैसे कोठारी से लेकर यशपाल तक सभी ने इस सहयोग को बढ़ावा दिए जाने पर बल दिया है। कोठारी द्वारा भारतीय शोध अध्ययनों को विश्व स्तरीय गुणवत्ता वाला बनाने के लिए व देश की प्रगति में योगदान देने के लिए छः अलग विश्वविद्यालयों की सिफारिश प्रदान की गई तो वहीं पिटरोदा महोदय द्वारा प्रत्येक विषय विशेष के लिए विश्वस्तरीय शोध हो सके इसके लिए 1500 अलग विश्वविद्यालयों की स्थापना पर बल दिया। यशपाल इसके विपरीत विषयों को अंतरविषयी बना कर नए ज्ञान

के आविष्कार पर बल देते हैं। बरहाल यह कहा जा सकता है कि विश्वविद्यालयों की इस बदलती भूमिका पर लगभग सभी आयोगों द्वारा अपनी सिफारिशों में शामिल किया गया है। मसलन 1964 का कोठारी आयोग, 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, NKC व यशपाल सभी ने शिक्षा संस्थानों की बढ़ती भूमिका पर बल दिया है। हालांकि 2004 के आंकड़ों के अनुसार भी भारत का अन्य देशों की तुलना में शोध मानवशक्ति का दायरा काफी सीमित है (तालिका-3) व स्नातक नामांकन व उत्तीर्ण छात्रों की तुलना में भी शोधकर्ताओं की संख्या एक सीमित दायरे तक ही है (तालिका-4)।

तालिका-3
शोध जनशक्ति 2000-04

देश	प्रति मिलियन शोध जनशक्ति	संख्या
भारत	119	128,484
यू.एस.	4,605	1,316,951
चीन	708	895,380
जापान	5,287	678,675
यू.के.	2,705	162,089
रूस	3,319	477,272
कोरिया	3,187	153,294
आस्ट्रेलिया	3,759	73,767

स्रोत: अग्रवाल पी-2009. इंडियन हायर एजुकेशन इनविजनिंग द फ्यूचर

तालिका-4
उच्च शिक्षा में उत्तीर्ण 2012-13

श्रेणी	योग
पी-एच.डी.	23067
एम.फिल.	20883
परा-स्नातक	1177019
स्नातक	5928857
पीजी डिप्लोमा	109113

क्रमशः

डिप्लोमा	600490
प्रमाण पत्र	61278
समेकित	19973
योग	7940680

स्रोत: एजुकेशनल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, भारत सरकार (मा.सं.वि.मं.) 2014

उच्च शिक्षा की आवश्यकता

आज विश्व के सभी राष्ट्र विकास में उच्च शिक्षा की भूमिका व योगदान को लेकर जागरूक हैं। भारत में आजादी के पश्चात् स्कूली शिक्षा के साथ-साथ ही उच्च शिक्षा का बढ़ता प्रसार इस ओर इशारा करता है कि भारत सरकार भी उच्च शिक्षा द्वारा प्राप्त होने वाले आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक लाभों व ज्ञान के नित नई खोज और राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने को आमादा है। तिलक उच्च शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि इसके प्रसार के राष्ट्र को अनेक लाभ होते हैं जैसे पहला, विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम से एनआईटी नए ज्ञान को निर्मित व प्रसारित करने का मंच प्राप्त होता है। दूसरा, यहीं यह माध्यम है जहां लगातार चलने वाले शोध-अध्ययन, विचार-विमर्श व नई कार्य-शैली समाज को सदैव नवीनता के प्रति उन्मुख रखती है। तीसरा, उच्च शिक्षा जिससे हमारा आशय तकनीक ज्ञान, कला व विज्ञान संबंधी ज्ञान सभी से है, यह वास्तव में समाज में उत्पन्न होने वाली विविध मांगों को पूरा करने के लिए मानवशक्ति का उत्पादन करती है। सरल शब्दों का सहारा लेकर कहा जाए तो उच्च शिक्षा के माध्यम से जटिल समाज की जटिल मांगों के अनुरूप युवाओं को प्रशिक्षित कर समाज का अस्तित्व बनाए रखा जाता है। चौथा, उच्च शिक्षा या विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम कोई भी राष्ट्र अपने युवाओं को वैश्विक मांग के अनुरूप व्यवसाय विशेष से जोड़ने का प्रयास करता है, ताकि वैश्विक स्तर पर वह अपनी पराकाष्ठा को बनाए रख सके। अन्य,विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम से समाज अपने मूल्यों, नियमों, संस्कृति विशेष की जड़ों को पोषित करने का कार्य भी करता है साथ ही उच्च शिक्षा के माध्यम से कोई भी समाज वैचारिक स्तर पर नयेपन के लिए एक द्वार को खोले हुए रहता है ताकि परिवर्तन के मार्ग को भी पोषित किया जा सकता है (तिलक)।

महमूद ममदानी (2007) उच्च शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए इसे स्कूली शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण बना देते हैं। इनके अनुसार उच्च शिक्षा ही वह स्थान होता

है जहाँ ना केवल नए ज्ञान का आविष्कार होता है बल्कि ज्ञान की सैद्धान्तिक वर्णन (documentation) यहीं होता है, जो ज्ञान के आविष्कार जितना ही महत्वपूर्ण होता है। दूसरा, उच्च शिक्षा ही वह मंच है जहां पाठ्यक्रम का निर्माण किए जाने के साथ भावी अध्यापकों का निर्माण भी किया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि यह वह स्थान है जहां व्यक्ति कि इच्छाओं का निर्माण होता है।

उच्च शिक्षा से समाज विशेष को जो लाभ (प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष) होते हैं। उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभों पर चर्चा की जाएँ तो उभर कर आता है कि यह न केवल व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को सबल करती है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए भी मददगार साबित होती है। जैसे उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति निसंदेह अपनी क्षमताओं का व्यवस्थित प्रयोग करने में अधिक समर्थ होता है। इस समर्थता के कारण उसकी मांग न केवल अपने राष्ट्र विशेष में बल्कि वैश्विक दृष्टि से भी बढ़ जाती है। उच्च शिक्षित युवा वैश्विक बाजार के लिए अधिक से अधिक लाभ देने में सक्षम होते हैं। इस कारण से अधिक वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण को बढ़ावा मिलता है। दूसरा, उच्च शिक्षा के माध्यम से व्यवस्थित व आधुनिक ज्ञान के माध्यम से ऐसे युवाओं को उत्पादित किए जाने का दावा किया जाता है जो बाजारी अर्थव्यवस्था के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं। तीसरा, एक कौशल निपुण व्यक्ति अर्ध निपुण या अनिपुण व्यक्ति की तुलना में अधिक गुणवत्तापूर्ण व अधिक संख्या में उत्पादन या वस्तु निर्माण करने में ज्यादा सक्षम होता है। इस प्रकार उच्च शिक्षा के माध्यम से निपुण मानवशक्ति का निर्माण किया जाता है। जिसके फलस्वरूप अधिक उत्पादन व लाभ की ओर राष्ट्र गतिमान होता है। चौथा, उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर आर्थिक रूप से सबल होता है। आर्थिक रूप से सबलता के कारण वह राज्य सरकार को अधिक से अधिक कर देने में सक्षम होता है। इस प्रकार अधिक राजस्व कर प्राप्त होने से राज्य सरकारें जनहित के कार्यों व सुरक्षा संबंधी व्यवस्था को अधिक बेहतरी से कर पाने में सक्षम होती हैं। इसी प्रकार यह चक्र चलता रहता है। इसी के साथ जब अधिक से अधिक संख्या में जब आर्थिक रूप से सबल व्यक्ति समाज में होंगे तो यह स्वाभाविक है कि वे अपनी अनिवार्य व सामान्य जरुरतों के लिए सरकार की पहल कदमी का इंतजार नहीं करेंगे। इस अर्थ में हम देखते है कि अप्रत्यक्ष रूप से उच्च शिक्षा से मिलने वाले लाभों में एक लाभ यह भी है कि यह सरकार के कार्य भार में कमी लाता है।

उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाले सामाजिक व राजनीतिक लाभों पर चर्चा करें तो यह उभर कर आता है कि प्रत्येक समाज को गतिशील बनाए रखने के लिए उच्च शिक्षा अति महत्वपूर्ण है। जैसे उच्च शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति जब विश्वविद्यालयों में शिक्षण–प्रशिक्षण हेतु दाखिल होते हैं तो वे सभी अपने अपने समाज विशेष की संस्कृति, भाषा, मूल्यों, विश्वासों व नृजातीय पहचान को ही प्रस्तुत करते हैं परंतु समय के साथ धीरे–धीरे वे सभी दूसरे समुदायों के नृजातीय पहचानों को भी सम्मान देना सीख जाते हैं। इस अर्थ में उच्च शिक्षा युवा वर्ग को वह मंच प्रदान करती है जहां विभिन्न सामाजिक समूह व नृजातीय पहचान व एक दूसरे को लगातार प्रभावित करते हैं जिससे विभिन्नताओं के प्रति सम्मान का भाव पैदा होता है। दूसरा, उच्च शिक्षा को निष्पक्ष व समता मूलक समाज की स्थापना करने वाले अभिकर्ता के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। समाज के वंचित वर्गों में गतिशीलता लाने में उच्च शिक्षा एक महत्वपूर्ण यंत्र साबित हो सकता है। तीसरा, उच्च शिक्षा द्वारा योग्यताओं को बढ़ावा देने के कारण उत्कृष्ट समाज की स्थापना में बल प्राप्त होता है (तिलक 2005)। चौथा, उच्च शिक्षित व्यक्ति न केवल अपने अधिकारों बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति भी सजग होते हैं, इस कारण वे उस समाज में जहां लोकतन्त्र स्थापित वहाँ उच्च शिक्षा व्यवस्था को बनाए रखने में भी मदद प्रदान करता है।

उच्च शिक्षा के प्रसार में राज्य की भूमिका

उच्च शिक्षा द्वारा लगातार राष्ट्र के विकास में बढ़ते योगदान का ही प्रभाव है कि भारत में लगातार उच्च शिक्षण संस्थाओं के प्रसार पर बल दिया जा रहा। हालांकि इस प्रसार में सार्वजनिक व्यय हो या निजी व्यय इसे लेकर एकतरफा स्थिति स्पष्ट नहीं है। भारत के संदर्भ में शिक्षा के क्षेत्र में निजी सहयोगों व प्रयासों को 1990 के दशक के पश्चात से स्पष्ट तौर पर बल दिया जा रहा है। जिस गति से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आजादी के पश्चात गति देखने को मिली है चाहे वह निजी कालेजों के खुलने का आंकड़ा हो या नामांकन का, उस गति से सरकार शिक्षा पर व्यय करने में विफल रही है। लगातार सरकारों से यह मांग की जा रही है कि ये कुल राष्ट्रीय आय का कम से कम छः प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करें परंतु भारत सरकार मात्र तीन प्रतिशत खर्चा कर उभरती मांगों को संतुष्ट करने का प्रयास कर रही है (देखें तालिका 5)।

तालिका-5
शिक्षा पर लोक व्यय और सकल घरेलू उत्पाद

वर्ष	चालू मूल्य दर पर सकल घरेलू उत्पाद (रु. करोड़ में)	शिक्षा एवं अन्य विभागों द्वारा शिक्षा पर कुल व्यय (रु. करोड़ में)	शिक्षा एवं अन्य विभागों द्वारा स.घ.उ. के % के अनुसार शिक्षा पर व्यय
1951-52	10080	64.46	0.64
1960-61	16220	239.56	1.48
1970-71	42222	892.36	2.11
1980-81	130178	3884.2	2.98
1990-91	510964	19615.85	3.84
2000-01	1925017	82486.48	4.28
2005-06	3390503	113228.71	3.34
2006-07	3953276	137383.99	3.48
2007-08	4582086	155797.27	3.40
2008-09	5303567	189068.84	3.56
2009-10	6108903	241256.01	3.95
2010-11	7248860	293478.23	4.05
2011-12(RE)	8391691	351145.78	4.18
2012-13(BE)	9388876	403236.51	4.29

स्रोत: एजुकेशनल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, भारत सरकार (मा.सं.वि.मं.) 2014

90 के दशक के दौरान हम पाते है कि भारत सरकार द्वारा उच्च शिक्षा की गंभीरता को लेकर एक बड़ा बदलाव आया। इस बदलावों को समझने के 90 के दशक व उसके पूर्व की उन सभी परिस्थितियों को समझना आवश्यक है जिनके कारण उच्च शिक्षा संबंधी धारणा में एक paradigm shift देखने को मिलता है। आजादी के पश्चात युद्ध में शामिल होना, युद्ध के दौरान हथियारों के लिए दूसरों पर निर्भरता, चीन से हार, बाहर के देशों में शोधों के फलस्वरूप नई व आधुनिक मशीनों के आविष्कार, मैक्सिकन गेहूं का आविष्कार, 90 के दशक में फिस्कल संकट को झेलना, विश्व बैंक से कर्जा लेना इत्यादि वे परिस्थितियाँ

थी जिनके फलस्वरूप राज्य व उच्च शिक्षा की व्यवस्था के मध्य बदलाव के बीज पनपने लगे। यह वह समय था जब भारतीय समाजवादी, सामाजिक लोकतन्त्र और कल्याणकारी राज्य के स्वरूप को रूपांतरित होते हुए देखा जा सकता था। यहाँ मात्र राज्य के स्वरूप में बदलाव नहीं आया बल्कि सम्पूर्ण व्यवस्था के पीछे जो दर्शन (philosophy) काम करता है उसमें बदलाव आता प्रतीत होता है। सामाजिक कल्याणकारी स्वरूप के स्थान पर स्वतंत्र बाजारी व्यवस्था के मद्देनजर व्यक्तिगत आर्थिक मूल्यों, व्यक्ति की चयन की स्वतन्त्रता को महत्व दिया जाने लगा। ऐसे दर्शन पर बल दिया जाने लगा, जिसके तहत सामाजिक कल्याण का कोई अर्थ नहीं रह जाता बल्कि मात्र व्यक्ति ही एक मात्र सत्य होता है। व्यक्तिगत इच्छाएँ, चयन, स्वतंत्रता व व्यक्तिगत हितों की पूर्ति व स्वतंत्रता को लोकतान्त्रिक मूल्यों से अधिक महत्व दिया जाता है।

इस दार्शनिक बदलाव के मद्देनजर हम पाते हैं कि शिक्षा के स्वरूप वह भी मुख्य तौर पर उच्च शिक्षा के रूप में बड़ा बदलाव आता है। 1986 कि राष्ट्र शिक्षा नीति हो या राष्ट्रीय ज्ञान आयोग या अंबानी-बिरला रिपोर्ट सभी के द्वारा छात्र को शिक्षा के लिए मिलने वाले कर्ज की पैरवी की गई, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप पर बल दिया गया व विश्वविद्यालयों के प्राप्त होने वाले लाभों को आर्थिक लाभ की दृष्टि से तोला जाना, ज्ञान वही जो आर्थिक क्षमता को बढ़ा सके जैसे वाक्यांशों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उच्च शिक्षा को वस्तु के रूप में स्थापित किए जाने का प्रयास किया गया। 1990 में jomtein में चलने वाली विश्व स्तरीय कान्फ्रेंस के तहत शामिल देशों को बेसिक शिक्षा पर बल दिए जाने पर जोर दिया गया व उच्च शिक्षा पर होने वाले व्यय में राज्य की बढ़ती भूमिका पर पर बल दिए जाने की बात की अपेक्षा की गई। भारत में 1993 से 1994 के काल में दो कमेटियों का गठन किया गया। एक की अध्यक्षता न्यायमूर्ति पुन्नया द्वारा व दूसरे न्यायमूर्ति स्वामीनाथन द्वारा की गई। दोनों की सिफारिसों में समानता यह रही कि दोनों ने छात्राओं से ली जानी वाली फीस में बढ़ोतरी, स्व-पोषित कोर्स के आरंभ, बैंकों द्वारा छात्रों को शिक्षायी कर्जा देने की नीति को बढ़ावा देने पर बल दिया। इसके पश्चात वर्ष 2000 में मुकेश अंबानी व बिरला की सिफारिशों में भी इन्हीं उपरोक्त बातों पर बल दिया गया। इन सिफारिशों द्वारा उस दर्शन को समाप्त करने पर बल दिया गया जो उच्च शिक्षा को व्यक्तिगत लाभ की बजाय समाज हित व कल्याण की प्रक्रिया मानता है और इसी आधार पर इस पर होने वाले व्यय की जिम्मेदारी व्यक्ति से अधिक समाज व राज्य द्वारा पूरा करने पर बल देता है।

जबकि नव उदारवादी अर्थव्यवस्था से जिस दर्शन का उदय होता है उसमें व्यक्ति को

स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार करने हुए, खुली प्रतिस्पर्धा, खुली बाजारी व्यवस्था व राज्य की संकुचित भूमिका पर बल दिया है। इसी दर्शन के प्रभाव का असर है कि उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाले इतने अनगिनत लाभों के बावजूद उच्च शिक्षा पर होने वाले व्यय से राज्य का हिस्सा धीरे-धीरे कम व निजी हिस्सेदारी बढ़ती जा रही है। व धीरे-धीरे उच्च शिक्षण संस्थाओं के संचालन का जिम्मा निजी हाथों में जाता जा रहा है। यह बदलाव मात्र भारत में नहीं है बल्कि लगभग विश्व के अमीर विकसित देशों में भी देखने को मिलता है (देखे तालिका 6)।

तालिका-6

उच्च शिक्षा में प्रति छात्र लोक व्यय में गिरावट

(प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का %)

देश	1990-91	2001-02	बदलाव
यू.के.	40.9	25.7	-15.2
आस्ट्रेलिया	50.7	23.5	-27.2
न्यूजीलैंड	67.8	25.1	-42.7
भारत	92.0	85.8	-6.2
चिली	27.1	19.2	-7.9
नेपाल	90.8	82.3	-8.5
सैस	45.9	32.8	-13.1
इश्तोनिया	55.9	31.8	-24.1
मलेशिया	116.6	83.5	-33.1
साउथ अफ्रीका	90.9	56.8	-34.1
हंगरी	81.3	31.4	-49.9
जमैका	132.3	70.5	-61.8
बोस्तवाना	161.5	88.6	-72.9
साउथ एशिया	90.8	60.4	-30.4
निम्न आय वाले देश	61.8	30.6	-31.4
उच्च आय वाले देश	47.1	66.5	19.4

Data Source: Tilak, B.G. 2005 Higher Education: A Public Good or a Commodity for Trade

तिलक के अनुसार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आज यह एक बहुत ही सामान्य बदलाव (सार्वजनिक से निजी की तरफ बढ़ना) है, जो न केवल विकासशील देशों बल्कि आर्थिक तौर पर सम्पन्न देशों में भी देखा जा सकता है (देखें तालिका 6)। जहां एक ओर उच्च शिक्षण संस्थाओं में छात्र-छात्राओं की संख्या दर में तेजी से उछाल देखने को मिल रहा है वहीं दूसरा तरफ पब्लिक फंड में लगातार आने वाली कमी के मद्देनजर उच्च शिक्षण संस्थाओं के भीतर गंभीर वित्तीय तनाव का जन्म हुआ है। इस वित्तीय कमी के परिणामस्वरूप प्रति विद्यार्थी पर खर्च होने वही राशि में गिरावट आई। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा को नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों के मद्देनजर निर्मित होने वाली भूमिका व स्वरूप के अंतर्गत भी समझना आवश्यक है, जहां स्थिरीकरण, संरचनात्मक सामंजस्य व भूमंडलीकरण के नाम पर अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोश व विश्व बैंक से धन प्राप्त किया जाता है।

उच्च शिक्षा : वस्तु है या नहीं

लंबे समय से शिक्षा को सामाजिक हित करने वाले साधन से रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। उच्च शिक्षा के संबंध में भी अनेक शिक्षाशास्त्री, चिंतक, अर्थशास्त्री आदि इसे सार्वजनिक हित के रूप में ही स्वीकार करते है। हालांकि पिछले कुछ सालों से बाजारी शक्तियों के बढ़ते प्रभाव और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी नियम कानूनों की तर्ज पर उस अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है जहां इसे जन हित का साधन माना जाता। जन हित को साधने वाली वस्तु की यह विशेषता होती है कि वह सभी को समान रूप से प्राप्त होती है। इस तक पहुँच किसी प्रतिस्पर्धा का विषय न होकर सभी तक आसान, सुगम पहुँच की व्यवस्था होती है। जबकि तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की संरचना में प्रतिस्पर्धा व चयन की स्वतंत्र महत्वपूर्ण विशेषता बनी हुई है। वहीं दूसरी तरफ, बाजारी युग में जब किसी वस्तु को परिभाषित किया जाता है तो वस्तु के दो रूप उभर कर सामने आते हैं। पहला, वस्तु एक बार प्रयोग की चीज होती है। एक बार का प्रयोग दूसरे व्यक्ति के प्रयोग को प्रभावित करना है। दूसरा, बाजार में जब वस्तु को विनिमय की वस्तु के रूप में देखते हैं तो इसका अर्थ होता है एक के स्थान पर हम दूसरे की प्राप्ति कर रहे हैं। जबकि शिक्षा के साथ इस प्रकार की विशेषता नहीं जुड़ी हुई है। ज्ञान एक बार प्रयोग का मसाला नहीं है। जैसे गणित में प्रयोग होने वाले सिद्धान्त को प्रयोग कर कोई भी लाभान्वित भी हो सकता है व आनंदित भी। किसी एक का मनोरंजन दूसरे को प्रभावित नहीं करता।

इस बहस को आगे बढ़ाने से पूर्व आवश्यक है कि 'commodity' के शाब्दिक अर्थ को समझा जाएं। शिक्षा को वस्तु के रूप में देखें या नहीं इससे पूर्व यह आवश्यक है कि

शब्दकोश के अनुसार वस्तु को किस रूप में समझा गया है। webster online dictionary के अनुसार इसका अर्थ 'आर्थिक लाभ की चीज', इस्तेमाल योग्य' या 'मूल्यवान' के रूप में परिभाषित किया गया है। उच्च शिक्षा को बाजारी युग में विनिमय की वस्तु के रूप में समझने के लिहाज से इसे दो स्तर पर बांटा गया है।

पहला, उच्च शिक्षा संस्थाएं व संगठन एक बाजारी वस्तु

दूसरा, इन संस्थाओं से उत्पादित विद्यार्थी वर्ग एक वस्तु

उच्च शिक्षा संस्थाएं व संगठन एक बाजारी वस्तु

जब हम शिक्षा व्यवस्था को एक बाजारी वस्तु के रूप में होने का दावा करते है तो उसका संबंध मात्र इन संस्थाओं की स्थापना में निजी सहयोग तक सीमित नहीं रहता बल्कि गुणवत्ता (वह भी एक प्रकार की) पर बल, उच्च शिक्षा पर लगाने वाला पूंजी व्यय व प्राप्त होने वाला लाभ, इनके मध्य संतुलन, उसकी प्रभावशीलता, उसकी उत्पादनशीलता, लाभ हानि अनुपात, लाभत्मक शक्ति इत्यादि बातों को शिक्षा व्यवस्था से जोड़ दिया जाता है। इसी विशेषताओं के साथ उच्च शिक्षा को विनिमय की वस्तु बनाया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा को उद्योगों व कारखानों से सामंजस्य रखे व इस संबंध को स्थापित करने में शिक्षा व्यवस्था में शामिल 'ज्ञान' के रूप को भी बदलाव लाना आवश्यक हो जाता है। अन्यथा इन संस्थाओं से उत्पादित मानव शक्ति रूपी वस्तु की मांग उस मांग के अनुरूप ना होने से हानि-लाभ के मध्य असमानता आना स्वाभाविक होगा। इस प्रकार उच्च शिक्षा को मात्र वस्तु कह देने से परिस्थितियों का निर्माण व निवारण नहीं प्राप्त किया जा सकता। जब हम उच्च शिक्षा को विनिमय की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते है तो जरुरी है कि कारखाना मॉडल के अंतर्गत उत्पादन व पुनर्रुत्पादन पर बल दिया जाएं। इस मॉडल के अन्तर्गत अध्यापक एक श्रमिक की भांति व छात्र उत्पाद के रूप में देखा जाता है।

सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था नव उदारवादी युग में खुद को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने को कितनी आमादा है इसे सत्र के आरंभ में स्कूलों व कालेजों के विज्ञापनों से समझा जा सकता है। अपनी गुणवत्ता का व्याख्यान करते ये विज्ञापन उन सभी विशेषताओं को शामिल करते हैं जो मापनीय है जैसे भूमि का विवरण, कक्षा का AC युक्त होना, NAAC द्वारा प्रदान ग्रेड, इंटरशिप व विदेशी विश्वविद्यालयों से इनका संबंध इत्यादि को शामिल किया जाता है। यह सब ठीक उसी प्रकार के विज्ञापनों की भांति होते हैं जैसे किसी भौतिक वस्तु मसलन कार या स्कूटर के विज्ञापन हों। गुणवत्ता को विमर्श की दृष्टि से

समझने पर यही उभर कर आता है कि विश्वविद्यालयों की धारणा में ये सभी विशेषताएँ 90 के दशक से पूर्व शामिल नहीं थी इसकी गुणवत्ता में भौतिक तत्वों का समावेशन तेजी से उस समय बढ़ा जब हमारी अर्थव्यवस्था में बड़ा बदलाव आया। इस बदलाव ने प्रत्येक व्यक्ति की कीमत को निश्चित कर दिया साथ ही प्रति व्यक्ति होने वाले खर्चे व प्राप्त होने वाले लाभ इसके मध्य भी संतुलन पर बल दिए जाने लगा। इसकी पुष्टि करते हुए कुमार व सारंगापानी (2004) बताते हैं कि शैक्षणिक विमर्श में 'गुणवत्ता' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है उसका विकास फैक्ट्री और उत्पादन की प्रक्रियाओं में हुआ है। वहाँ यह शब्द उत्पादित वस्तुओं के विभिन्न आयामों को नियंत्रित करने की कसौटी रहा है। दिलचस्प बात यह है कि नब्बे के दशक से पूर्व शिक्षा पर केन्द्रित किसी भी शब्दकोश में 'गुणवत्ता' नमक प्रविष्टि थी ही नहीं। 1990 के दशक से यह शब्द महत्वपूर्ण होने लगा। इसी दौरान अर्थशास्त्र के क्षेत्र में 'मानव पूंजी सिद्धान्त' का उदय हुआ। यह ऐसा समय था जब तीसरी दुनिया के बहुत सारे देशों के आर्थिक समायोजन व नियोजन में अंतर्राष्ट्रीय सहायता तथा विश्व बैंक जैसे कर्जदाता संस्थानों की दखलांदजी बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार कुमार व सारंगापानी यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि बदलती परिस्थितियों ने किस प्रकार उस दर्शन को बदल दिया जहां ज्ञान ज्ञान की पिपासा हेतु प्राप्त किया जाता है। उसके स्थान पर वह दर्शन महत्वपूर्ण होने लगा जहां शिक्षा को आर्थिक विकास की गति के लिए निवेश के रूप में देखा जाता है।

उपरोक्त तर्कों के अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर हुए समझौते के मद्देनजर कुछ ऐसे तथ्य उभरते है जहां शिक्षा को सेवा का रूप प्रदान करने के लगातार प्रयास किए जा रहे है जैसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर GATS (जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड सर्विसेस) विश्व व्यापार संगठन के मद्देनजर उच्च शिक्षा को भी सेवा क्षेत्र के अंतर्गत शामिल कर इसे क्रय विक्रय की वस्तु व लाभ का विषय बना दिया गया है। जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड सर्विसेस के अंतर्गत प्रावधान के अनुसार वैश्विक दृष्टि से शिक्षा के प्रसार के लिए आवश्यक है कि इस समझौते को मनाने वाले देश निम्न बिन्दुओं पर बल देंगे। जैसे: (1) उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए एक देश से दूसरे देश में छात्रों के आवागमन संबंधी नीतियों को सरल बनाया जाना, (2) दूसरे देशों में शिक्षा सेवा को इंटरनेट के द्वारा उदाहरणस्वरूप डिस्टेन्स एजुकेशन, ऑनलाइन परीक्षा, वर्चुअल कक्षा व पठन सामाग्री आदि के माध्यम से प्रदान करने के वातावरण को सुगम बनाना (3) विदेशी विश्वविद्यालयों की शाखाओं को दूसरे देशों में खोला जाना, (4) विदेशी कालेजों या विश्वविद्यालयों से मान्यताप्राप्त पाठ्यक्रम को घरेलू

निजी कालेजों में चलाए जाने का प्रावधान करना इत्यादि। उच्च शिक्षा को एक प्रक्रिया के रूप में नए ज्ञान के उत्पाद व उसके सैद्धांतिकरण से जोड़ा जाए तो पाते है उच्च शिक्षा का अंतिम उत्पाद वह ज्ञान होता है जिसका सैद्धांतिकरण किया जा चुका है। इसका सीधा संबंध पुस्तक प्रकाशन, लेख प्रकाशन व नई खोज को पेटेंट कराने से जुड़ा है। यह प्रक्रिया इस दृष्टि से लाभ-हानि के उस द्वार से जुड़ी है जिसका सीधा संबंध पूंजी व आर्थिक लाभ से जुड़ा होता है। यहीं कारण है कि शोध जर्नल किताबों की तुलना में कम प्रकाशित होती है चूंकि उनके खरीददार वर्ग सीमित होते हैं। इस प्रकार यह पूर्ण रूप से निजी पूंजी व्यय का मसला बन जाती हैं। वैश्वीकरण के युग व इंटरनेट के विकास ने इस उद्योग को और अधिक गति प्रदान की है। आज इंटरनेट से आप ऑनलाइन पेमेंट कर किसी भी देश के साहित्य का आनंद प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से ज्ञान पूंजी से जुड़े मसले के रूप में उभरता है (कुमार एम.फिल. कक्षा संवाद)।

इन संस्थाओं से उत्पादित विद्यार्थी वर्ग एक वस्तु

इस तर्क को समझने के लिए शिक्षा व्यवस्था को आर्थिक विकास हेतु कुशल श्रमिक बल, शोधकर्ता इत्यादि के निर्माण की संस्था के रूप में समझना होगा। कैसे शिक्षा व्यवस्था अपने माध्यम से कुशल व प्रशिक्षित मानव बल का उत्पाद करती है व उन्हें मूल्ययुक्त बना देती है। हाल में 1985 में जब शिक्षा मंत्रालय का नाम बदल कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय रखा गया, तब वह झलक मिली जहां मानव को पूंजी का रूप प्रदान किया गया। इस दृष्टि से जब हम उच्च शिक्षा की भूमिका को समझते हैं जहां वह कुशल व्यक्तित्व का निर्माण करता है वहाँ यह प्रक्रिया investment के रूप में उभरती है।

उच्च शिक्षा को विनिमय वस्तु का रूप दिए जाने की हानियाँ

उच्च शिक्षा को जब सार्वजनिक हितों की पूर्ति करने वाली प्रक्रिया के स्थान पर बाजारी हाथों में दे दिया जाता है जहां वह क्रय-विक्रय की वस्तु के तौर पर प्रस्तुत होती है तो कई दुखद परिणाम सामने आते हैं जैसे पहला, जब हम उच्च शिक्षा को घरेलू बाजार या अंतरारराष्ट्रीय बाजार में क्रय-विक्रय की वस्तु बना देते हैं तो उच्च शिक्षा का जो रूप उभर कर आता है वह मात्र व्यक्तिगत हितों को संतुष्ट करने वाले एक यंत्र के समान होता है जहां सामाजिक वंचनाओं से मुक्ति या सार्वजनिक हितों की पूर्ति का कोई भाव शेष नहीं रह जाता है। ऐसे में हम जिस प्रकार के मानव निर्माण का दावा करते है वे भी स्व-केन्द्रित व खुद के हितों को प्राथमिकता देने वाले चरित्र से युक्त होते हैं जिनसे यह अपेक्षा की जानी कि वे समता मूलक समाज की स्थापना करेंगे स्व में एक भ्रम होगा। दूसरा, उच्च

शिक्षा जिसका दायरा अपेक्षाकृत स्कूली शिक्षा की तुलना में बहुत कम है (संख्या की दृष्टि से उच्च शिक्षा में दाखिल होने वाले विद्यार्थियों की संख्या प्रति वर्ष) वहाँ बाजारी शक्तियों का बढ़ता प्रभाव जिस स्थिति को जन्म देता है वहाँ सरकार की जवाबदेही समाप्त हो जाती है। उच्च शिक्षा पर लगने वाला धन, प्रबंधन, ज्ञान निर्माण या संगठन का प्रसार सभी कार्यों से सरकार मुक्ति पा लेती है। जिसके फलस्वरूप बाजार की जड़ें गहरे रूप से मजबूत हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में सबसे अधिक चुनौती ज्ञान निर्माण को मिलती है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया जो समाज की मांगों के अनुसार खुद का रूप लेती थी अब बाजारी मांगों को पूरा करती प्रतीत होती है। तीसरा, विश्वविद्यालयों में होने वाले शोध अध्ययनों को भी बाजारी लाभ व हितों के अनुसार स्वयं को ढालना होगा अन्यथा वे सभी विषय जो बाजारी शक्तियों के हितों के अनुरूप नहीं होंगे वे विषय उपयोगिता की दृष्टि से पिछड़ते चले जाएंगे (तिलक 2005)।

सतीश देशपांडे (2009) बढ़ते निजीकरण की हानियों को इंकित करते हुए कहते हैं कि विश्वविद्यालय ही वह मंच है जहां सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ी जा सकती है। इस संस्थाओं पर बाजारों व सत्ता का बढ़ता प्रभाव इस लड़ाई को कमजोर कर देता है। वहीं करुण चानना (2007) उच्च शिक्षा में बढ़ते वैश्विक बाजारों के हस्तक्षेप का विरोध करते हुए कहती हैं भूमंडलीकरण विश्व का रूपान्तरण वैश्विक दुनिया में कर देती है जिसके कारण उच्च शिक्षा कौशल प्रशिक्षण (कारपोरेट दुनिया की जरुरत को पूरा करने के लिए) का केंद्र बन जाती है। इसके अतिरिक्त कला व विज्ञान के मध्य न केवल स्पष्ट भेद किया जाता है बल्कि कला व मानविकी विषय को तकनीकी व विज्ञान के विषय की तुलना में कम आँका जाता है। इसके फलस्वरूप उसी ज्ञान को प्राथमिकता दी जाती है जो बाजारी मांगों के अनुरूप होती है। भारत में इस प्रकार का बदलाव भारत की बदलती आर्थिक नीतियों के मद्देनजर समझा जा सकता है। जिसमें उच्च शिक्षा में राज्य के निवेश का कम होना, निजी साझेदारों की बढ़ती भूमिका, उच्च शिक्षा स्व-पोषित संस्थाओं को बढ़ावा देना, उच्च शिक्षा के अकादमिक वातावरण में बदलाव आना, व्यावसायिक व तकनीकी विज्ञान विषयों का बढ़ता वर्चस्व आदि इस सभी बदलावों के फलस्वरूप उभर कर आते हैं। इन सभी बदलावों का महिला वर्ग पर बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उनके ज्ञान को वैश्विक ज्ञान में शामिल नहीं किया जाता। वैश्विक ज्ञान की इस दौड़ में महिला वर्ग पहले से और अधिक पिछड़ती चली जाती है।

निष्कर्ष

आज का भारत शिक्षा की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़े बाजारों में से एक है। एक अनुमान के अनुसार भारत की लगभग आधी जनसंख्या तीस वर्ष तक के आयु समूह का प्रतिनिधत्व करती है और इसी समूह को भविष्य में कुशल श्रमिक के रूप में उभारा जा सकता है।उच्च शिक्षा में लगातार बढ़ती नामांकन दर, सरकारी बजट का संकुचन, शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती सार्वजनिक-निजी-भागीदारी, निजीकरण व बाजारीकरण का बढ़ता वर्चस्व इत्यादि उन सभी परिस्थितियों का निर्माण करते है, जिनसे उच्च शिक्षा निजी लाभ व बाजारी लाभ के साधन के रूप में उभरती हैं। भारतीय उच्च शिक्षा के संदर्भ में निकल कर आता है कि 90 के दशक के दौरान उच्च शिक्षा में कई ऐसे बदलाव किए गए जिससे उच्च शिक्षा बाजारी वस्तु के रूप में स्थापित होती है। लगातार बढ़ते निजी कालेज व विश्वविद्यालय इसी का प्रत्यक्ष रूप हैं। लगातार बढ़ती नामांकन दर व उच्च शिक्षा के लिए बढ़ती मांग ने बाजारी शक्तियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जहां वे आरंभिक धन व्यय के पश्चात अपार लाभ प्राप्त सकते हैं। 1985 में शिक्षा मंत्रालय का नाम बदल कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय रखा जाना इस बात को प्रस्तुत करता है कि प्रत्येक व्यक्ति पर होने वाले व्यय को इनवेस्टमेंट का रूप प्रदान किया गया। आज लगातार इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि उच्च शिक्षा के माध्यम से वैश्विक ज्ञान व वैश्विक बाजारों के लिए कौशल का विकास किया जाए। इस प्रयास में उच्च शिक्षा की प्रक्रिया (शोध, प्रकाशन, शिक्षण, पाठ्य सामाग्री तक पहुँच इत्यादि) व उत्पाद (कुशल प्रशिक्षित मानव बल) दोनों ही ऐसी सेवा के रूप में उभरते है, जिसका संबंध सीधे रूप में पूंजी विनिमय से होता है।

संदर्भ

अग्रवाल, पी. 2009 *इंडियन हायर एजुकेशन: इनविजनिंग द फ्यूचर.* सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली

चानना, के. 2007 *ग्लोबलाइजेशन, हायर एजुकेशन एंड जैंडर.* 'इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली' 42(7)

देशपांडे, सतीश फोर्थकमिंग. *'सोशल जस्टिस एंड हायर एजुकेशन इन इंडिया टूडे: मार्केट्स, स्टेट्स, आइडियोलॉजी एंड इनइक्वालिटीज इन ए फ्लूइड कान्टेस्ट, इन मर्था नूसबौम एंड जोया हसन (एड.) इक्वालाइजिंग एक्सेस: अफरमेटिव एक्शन इन हायर एजुकेशन इन इंडिया, द यूनाटेड स्टेट्स एंड साउथ अफ्रीका,* आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, फोर्थकमिंग 2012

एजुकेशनल स्टैटिक्स एट ए ग्लांस. 2014 मा.सं.वि.मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

ममदानी, एम. 2007. *हायर एजुकेशन: द स्टेट एंड द मार्केट प्लेस.* इंडियन एजुकेशन रिव्यू, वाल्यूम 43, नं.1, जनवरी 2007

तिलक, जे.बी.जी. 2013. *हायर एजुकेशन इन इंडिया: इन सर्च आफ इक्वालिटी, क्वालिटी एंड क्वान्टिटी.* ओरियन्ट ब्लैकस्वान प्रा. लि., नई दिल्ली

तिलक, जे.बी.जी. 2013. *पब्लिक सब्सिडीज इन एजुकेशन इन इंडिया, इन तिलक (एडीटर)., हायर एजुकेशन इन इंडिया: इन सर्च आफ इक्वालिटी, क्वालिटी एंड क्वान्टिटी.* ओरियन्ट ब्लैकस्वान प्रा. लि., नई दिल्ली

तिलक, जे.बी.जी. 2005. *हायर एजुकेशन: ए पब्लिक गुड और ए कमोडिटी फार ट्रेड: कमिटमेंट टू हायर एजुकेशन और कमिटमेंट आफ हायर एजुकेशन टू ट्रेड.* पब्लिस्ड इन सेकण्ड नोबल लौरेट्स मीटिंग इन बार्सेलोना.

यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन. 2003. *अनुवल रिपोर्ट* 2002-03, नई दिल्ली: यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन

यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन. 2008. *हायर एजुकेशन इन इंडिया: इश्यूज रिलेटेड टू इयूपैंशन, इन्क्लूसिवनैस, क्वालिटी एंड फाइनेंस.,* नई दिल्ली युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन

कुमार, कृष्ण एवं पद्म एम सारंगपाणी, 2004, *गुणवत्ता की बहस का इतिहास. कंटमपरेरी एजुकेशन डायलॉग,* वाल्यूम 2:1, पीपी. 30-53, अनुवाद: योगेंद्र दत्त, क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र केन्द्रीय शिक्षा संस्थानए दिल्ली विश्वविद्यालय

कुमारए कृष्ण, (2015), एम.फिल. (2015–2017 सत्र) शिक्षण-अधिगम कक्षा संवाद के दौरान प्रदान किए विचार.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

अध्यापक शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ और चुनौतियाँ
उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में

आर.पी. पाठक* एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज****

भूमिका

उदीयमान ज्ञान प्रेमी समाज में उच्च शिक्षा की बड़ी भूमिका होती है। राष्ट्रीय संपदा को समृद्ध करने में यह बड़ा योगदान करती है। आर्थिक समृद्धि और मानवीय पूंजी के बीच संबंध की स्थापना में इसका कार्यकारी अवदान होता है। मानवीय पूंजी के विकास के ही अनुपात में राष्ट्रीय पूंजी और आय में वृद्धि होती है। अतएव मानवीय ज्ञान और कुशलताओं के परिप्रेक्ष्य में यदि धन और सुविधाओं का निवेश किया जाएगा तो निश्चय ही इनमें वृद्धि होगी। शैक्षिक अर्थशास्त्रियों ने प्रयोगों के आधार पर ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं कि 21वीं सदी के शुभागमन ने इस तथ्य को और भी मुखरित कर दिया है। मात्र गुणसंवाही सीखने की संस्थाएँ ही विश्व नेतृत्व की क्षमता से राष्ट्र-युवाओं को संयोजित कर सकती हैं। इस गुणवत्ता की दशा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये उच्च शिक्षा के संस्थानों की आंतरिक गतिकी (The Internal Dynamics) अभिनवतापूर्वक समुन्नत करना होगा और व्यवस्था में युगापेक्षी परिवर्तन लाना होगा।

अध्यापक शिक्षा : एक उत्पादक शैक्षिक आयोजन

अध्यापक शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है जिसमें विभिन्न स्तर वाले और वर्गों वाले अध्यापकों को इस भाँति शिक्षित करने के लिये प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम प्रजन्म को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ ही उनके समस्त शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में वे सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, साधन संपन्ता तथा नवाचारिकता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपन एवं

* *संकाय प्रमुख एवं विभागाधयक्ष, श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृतविद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय नई दिल्ली*
E-mail:pathakoham@gmail.com
** *सह-प्राचार्य शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृतविद्यापीठ, मानित विश्वविद्यालय नई दिल्ली*
Email:- amitakshi06@rediffmail.com

मानवता बोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके। अन्य शब्दों में शिक्षण एक उद्यम अथवा 'प्रोफेशन' है। इस अर्थ में यह आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा के आयोजन में उद्यमगत नीति का प्रावधान हो, साथ ही संवेगात्मक कोण से दक्षता प्रदान करने की यथेष्ट व्यवस्था हो। इस आशय से यह आवश्यक होगा कि इस उद्यम द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं सभी चारित्रिक मर्यादाओं का अनुरक्षण और विकास संपन्न किया जाए साथ ही अन्याय वांछित प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास भी साधा जा सके।

अध्यापक-शिक्षा : नव्यज्ञान एवं नव्य अधिगम

शिक्षक-शिक्षा की उपादेयता की वृद्धि के सन्दर्भ में नव्य-अधिगम एवं नव्यज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज की विकासमान नव्य सूचना और सम्प्रेषण प्रविधियों ने शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम और प्रविधियों पर भी यथेष्ट प्रभाव डाला है। इसी भाँति नव्य आर्थिक और सामाजिक दशाओं से भी शिक्षक-शिक्षा का स्वरूप बदला है अतएव शिक्षक-शिक्षा जगत् के सभी कर्मियों के लिए यह सहज वांछनीय है कि वे सदा सर्वदा नव्यज्ञान और नव्य अधिगम के लिये अपने को उद्यत बनाए रखें।

नव्यज्ञान का वातावरण उदीयमान दशा में रहा है और आज तो यह अधिक मुखर स्थिति में है। इस क्रांतिकारी परिवर्तन की दशा में शिक्षक-शिक्षा कतिपय मूलभूत प्रश्नों से निर्देशित हो रही है- जैसे हम किन्हें शिक्षित कर रहे हैं? हम किस प्रकार के शिक्षित समाज की रचना कर रहे हैं? ऐसे कुछ प्रश्नों का समाधान शिक्षक-शिक्षा को खोजना ही होगा। इन समाधानों की खोज सन्दर्भ में शिक्षक का दायित्व स्वयमेव बढ़ता है। उन्हें ज्ञानोत्पादन की पूरी समझ करनी होगी, ज्ञान के आदान-प्रदान की समीचीन व्यवस्था में अपने को पारंगत बनाना होगा। उनकी भूमिका एक संयोजक की होगी और जिन्हें लोगों को लोगों से और लोगों को इन नवागत-नव्य विकसित सूचनाओं से जोड़ना होगा, उन्हें विज्ञ बनाना होगा, उन्हें ज्ञानोत्पादन के स्रोतों, साथ ही ज्ञान के अन्य प्रयोक्ताओं और छात्रों को जानना-समझना होगा। ऐसी परिस्थितियों की साकारता हेतु शिक्षक-शिक्षाकर्मी समुदाय को अपने तर्क पूर्ण बुद्धि वैभव का प्रयोग करना होगा, इतना ही नहीं उसे एक ओर तो ज्ञानकर्मी (Knowledge worker) की भूमिका अदा करनी होगी तो दूसरी ओर उसे 'अध्यापक अनुसंधाता' (Teacher Researcher) एवं 'अध्यापक व्यवसायी' की भूमिकाओं को भी निभाना होगा, तभी सृजनात्मकता के साथ नवाचार की उपादेयता को यथापेक्षा बढ़ाया जा सकेगा।

अध्यापक शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ

नव्यज्ञान और अधिगम के क्षेत्र में त्वरित और क्रांतिकारी विकास के कारण आज का अध्यापक –शिक्षा जगत संक्रमण की परिस्थिति से गुजर रहा है। यहां नित्य नई चुनौतियां उभर रही हैं अनेकानेक सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक कारण इन्हें और भी बढ़ा रहे हैं। प्रत्येक स्तर पर अध्यापक शिक्षा का मूलभूत लक्ष्य यथापेक्षा पूरित नहीं हो पा रहा है। इसी कारणवश अध्यापक शिक्षा न तो उत्तम अध्यापक एवं अध्यापिका की तैयारी को सुनिश्चित कर पा रही है और न ही उनमें उच्च स्तरीय गुणात्मकता को समावेशित कर पा रही है। अध्यापक श्रेष्ठ निर्देशकर्त्ता के रूप में उभर नहीं पा रहे हैं। जिससे अध्यापक शिक्षा के संकल्पित निहितार्थ पूरे नहीं हो पा रहे हैं। फलस्वरूप आज की अध्यापक शिक्षा अनेकानेक समस्याओं से जूझ रही है।

प्रवेशपरक समस्याएँ

वर्तमान प्रदेश देश में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के विभिन्न स्तरों में प्रवेश, एक बड़ी समस्या बना हुआ है। विश्वव्यापी 'सर्व–शिक्षा अभियान' के तहत इन वर्षों में पूरे देश में प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक विद्यालय तेजी से बड़ी संख्या में खोले गए हैं और खोले जा रहे हैं इस कारण से बड़ी संख्या में अध्यापकों की आवश्यकता आ पड़ी है। इस आवश्यकता पूर्ति के आशय से पूरे प्रदेश में, देश में बड़ी संख्या में अध्यापकों की आवश्यकता आ पड़ी है। इस आवश्यकता पूर्ति के आशय से पूरे प्रदेश में, देश में बड़ी संख्या में अध्यापक – प्रशिक्षण पाठ्यक्रम खोले गए हैं जिनमें बी.एड्., बी.पी.एड्. , डी.एल्.एड् आदि कक्षाओं में प्रशिक्षणार्थियों की कई गुना सीटें बढ़ी हैं। राज्य सरकारें और विश्वविद्यालय स्वयं इस दिशा में सक्रियता बरत रहे हैं। पर इन विभिन्न स्तरों पर प्रवेशार्थियों का चयन करते समय जिन मापदण्डों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है, प्राय: उनका अनुपालन कठिनाई से हो रहा है।

प्रवेश हेतु चयन के लिये जहाँ पहले उपलब्धिगत सूचकांक को महत्त्व दिया जाता था वहाँ आज अधिकांशत: उसके स्थान पर प्रवेश–परीक्षा को महत्त्व दिया जा रहा है। प्रश्नपत्रों में प्राय: सामान्य ज्ञान से संबंधित प्रश्न रखे जा रहे हैं। विषयगत ज्ञानात्मक स्तरीय प्रश्नों को उतना महत्त्व नहीं दिया जा रहा है। फलत: यह परीक्षण यथारूपेण पूर्ण नहीं दिखायी पड़ता। इन परीक्षणों में भाषागत या अभिव्यक्तिपरक योग्यताओं के परिज्ञान हेतु यथेष्ट प्रयास नहीं दिखायी पड़ता। इसी भाँति इनमें शिक्षण–अभिवृत्ति, रुचि, अभिक्षमता

आदि के सम्यक् ज्ञान हेतु कोई समीचीन प्रयास नहीं दिखायी पड़ता एवं विविध विद्यालय अध्यापन-विषयों में योग्यता-प्रशिक्षण हेतु समुचित प्रश्नों का निर्माण प्रवेश-परीक्षा प्रश्नपत्रों में प्रायः नहीं किया जाता तथा सामान्य मानसिक योग्यता एवं उसके आयामों को जानने के लिये किसी मानवीकृत परीक्षण का प्रयोग करना जरुरी नहीं माना जाता है। परिणामस्वरूप प्रवेश-परीक्षा मात्र एक दिखावा बनकर रह गयी है।

इतना ही नहीं सभी राज्य के विश्वविद्यालयों के अध्यापक-शिक्षा पाठ्यक्रमों में N.C.T.E. के दिशा निर्देशों के बावजूद काफी भिन्नता पायी जाती है। प्रशिक्षण विभागों, संस्थानों में प्रवेश की एकाधिक कोटियाँ भी व्यवहार में लागू हैं। प्रदेश में सम्प्रति 85% सीटें सीधे विश्वविद्यालय की सूची से भरी जाती हैं जबकि 15% सीटें प्रबन्धकीय व्यवस्था के द्वारा भरी जाती हैं और जिनके नियमों में वर्ष प्रतिवर्ष भिन्नता दिखायी पड़ती है। वर्तमानतः उत्तर प्रदेश में बी.एड्. प्रवेश परीक्षा 2007-2008 से समन्वित (Combind) स्तर की हो गयी है तथा उसी सत्र से शिक्षण- संस्थानों में प्रबंधकीय व्यवस्था की 15% सीटों को भी समाप्त कर दिया गया है। विद्यार्थी भिन्न-भिन्न फीस के ढ़ाचों के भी शिकार होते हैं। इन दशाओं-परिस्थितियों के चलते प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का प्रवेश अनेकानेक समस्याओं से घिरा दिखायी पड़ता है जिनका समाधान दुश्कर प्रतीत हो रहा है।

प्रशासनिक समस्याएँ :

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में राज्य, शासन और विश्वविद्यालययों का नियन्त्रण कम है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ करने की अनुमति इधर के वर्षों में 'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद' देती है। इससे प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और नए प्रशिक्षण-संस्थान खोलना काफी कठिन हो गया है। तब भी देश के राज्यों विशेषकर उत्तर प्रदेश में लगभग पाँच वर्षों में अच्छी संख्या में स्व-वित्तपोषित प्रशिक्षण के विभाग - संस्थान पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ किए हैं। प्रायः संस्थानों को प्रवेशार्थ एक सौ सीटें दी गयी हैं। विश्वविद्यालय स्तर पर प्रवेश चयन हेतु प्रवेश परीक्षाएँ संचालित की जा रही हैं तथापि विश्वविद्यालयों को इन परीक्षाओं के आयोजन में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कहीं माफिया गिरोह प्रवेश प्रक्रिया को बाधित कर रहा है तो कहीं अन्यान्य अभिकरण ओर तत्त्व प्रवेश प्रक्रिया की शुद्धता को प्रदूषित कर रहे हैं। इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो परीक्षा आयोजक तन्त्र ही इनमें दूषण फैलाता दिखता है। ऐसी दशा में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेशार्थ चयन, शुद्धता के नाम पर गम्भीरता से प्रश्नचिन्ह लग जाता है। स्व-वित्तपोषित कॉलेजों की अपनी अनेक समस्याएँ हैं। उन्हें एक तो सुयोग्य अध्यापक नहीं मिल पा रहे

हैं और यदि मिलते भी हैं तो वे उन्हें उचित वेतन नहीं दे पा रहा है। इन महाविद्यालयों के अधिकांश प्रबन्धतन्त्र तो इस पाठ्यक्रम के द्वारा महाविद्यालय और निजी कोषों को भरने की प्रवृत्ति से ग्रस्त दिखते हैं। इससे शिक्षण और प्रशिक्षण का स्तर गिरता जा रहा है। राज्य शासन, विश्वविद्यालय और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ये सभी मिलकर भी वांछित प्रतिमानों का अनुरक्षण नहीं कर पा रही हैं। स्थिति स्पष्ट है कि संस्थाएँ न पाठ्यक्रमों की सुचारू रूप से व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं। प्रशिक्षणपरक बी.एड., बी.पी.एड. आदि उपाधि आवश्यक होते हुए भी मखौल का विषय बन गयी हैं। प्रवेश, शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध तथा परीक्षण इनके सारे प्रतिमान गिरते जा रहे हैं।

पाठ्यक्रम संबंधी समस्याएँ

अध्यापक-शिक्षा का प्रचलित पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर पर सर्वत्र प्राय: एक वर्ष का है। जिसमें अवकाश एवं प्रवेश अवधि को छोड़कर लगभग दो सौ दिन का समय शेष रह जाता है। यह प्रचलित पाठ्यक्रम को समय पर पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है। इसी कारणवश राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने इस अवधि को दो वर्षीय करने की सिफारिश की थी वर्तमान में 2015 से इसे लागू कर दिया गया है। इंटर्नशिप को अनिवार्य बनाए जाने की दिशा में यह और भी समीचीन प्रतीत होती है किन्तु अधिकांश संस्थाओं ने इसे व्यावहारिक करने में अपनी अक्षमता प्रकट की है।

इसी भाँति पाठ्यक्रम में कई ऐसे सैद्धांतिक प्रश्न पत्र निर्धारित मिलते हैं जिनका व्यावहारिक शिक्षण-प्रशिक्षण से सीधा संबंध नहीं दिखायी पड़ता। पाठ्यक्रम में विस्तार के कारण यह लगभग 40% का समय ले लेता है। फल यह होता है कि प्रायोगिक कार्य तथा शिक्षण अभ्यास आदि के लिये शेष 30% समय ही बच पाता है। इससे पाठ्यक्रम में व्यावहारिक एवं प्रायोगिक पक्ष प्राय: अपेक्षित बना रहता है। इतना ही नहीं अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में तादात्म्य और सह-सम्बन्ध की कमी भी प्राय: देखने को मिलती है। देखा जा रहा है कि शिक्षण कला, तकनीकी एवं मूल्यांकन से संबंधित प्रश्न पत्रों को शिक्षा के सिद्धांत, शिक्षा का मनोविज्ञान तथा शिक्षा का इतिहास आदि की तुलना में कम महत्त्व दिया जाता है। यह भी देखा जा रहा है कि इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में छात्र सहभागिता मूलक तकनीकों को कम महत्त्व दिया जा रहा है, पाठ्यक्रम विश्लेषण तो प्राय: किया ही नहीं जाता। प्रस्तुतिकरण योजना निर्माण के लिये कोई ठोस प्रयत्न किये जाते नहीं दिखाई पड़ते। अधिगम के लिए मात्र व्याख्यान विधि का सहारा लिया जाता है। परीक्षण पूर्णत: सैद्धांतिक पाठ्यक्रमाधारित है, जिसे समीचीन और यथेष्ट नहीं कहा जा

सकता। इसी भाँति प्राय: देखा गया है कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में शिक्षण अभ्यास को समुचित महत्त्व नहीं दिया जाता है। इससे संबंधित अंशों सूक्ष्म-शिक्षण, लघु-शिक्षण, अनुरूपित-शिक्षण आदि पाठ्य प्रकरणों पर अनेक संस्थाओं में यथेष्ट सैद्धांतिक पाठ्यक्रम आधारित हैं, जबकि यह व्यावहारिक शिक्षण अभ्यास की दृष्टि से परमावश्यक है। ऐसे ही अधिकांश प्रशिक्षण संस्थानों में छात्र-छात्राओं द्वारा शिक्षण अभ्यास की औपचारिकता निभायी जाती है जो कि नितांत चिन्तनीय है।

इस प्रकार यह सहज कल्पनीय है कि इन दिनों हमारे प्रशिक्षण संस्थान पूर्ण और यथेष्ट आधुनिक पाठ्यक्रम का व्यावहारिक अनुगमन नहीं कर पा रहे हैं, यद्यपि औपचारिक रूप से इन पाठ्यक्रमों को प्राय: आधुनिक अद्यतन अवश्य बनाया गया है।

शिक्षण अभ्यास से संबंधित समस्याएँ

वर्तमान अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम का यह एक बड़ा अपेक्षित पक्ष है। अधिकांश प्रशिक्षण संस्थानों में इन दिनों न तो यथेष्ट अध्यापकीय निरीक्षण-पर्यवेक्षण की व्यवस्था दिखाई पड़ती है न ही प्रशिक्षणार्थियों को इतना समय दिया जाता है कि वे पाठ्य-विषयवस्तु के विधिवत् शिक्षण की पूर्व तैयारी कर सकें अथवा पाठ का समुचित समन्वयन कर सकें। वस्तु विश्लेषण के बारे में प्राय: शिक्षक अपने में सुस्पष्ट और विज्ञ नहीं होते। परिणाम यह होता है कि पूर्वाभ्यास के अभाव में प्रशिक्षु-अध्यापक विश्वासपूर्वक अपने शिक्षण का अभ्यास नहीं कर पाते। उसे वास्तविक शिक्षण-अभ्यास कक्षों में वहाँ के अध्यापकों का यथेष्ट सहयोग नहीं मिल पाता। इसी भाँति अधिकांश शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षु-अध्यापकों के निरीक्षण और मूल्यांकन के लिये किसी स्तरीय मापनी का प्रयोग नहीं किया जाता। उन्हें प्रतिपुष्टि करने के लिये तो अभी तक कोई सर्वमान्य मानक निर्धारित ही नहीं किया गया है। फलत: निरीक्षण कार्य प्रशिक्षु-अध्यापकों की रुचि और इच्छा पर तथा वस्तुनिष्ठता पर निर्भर न होकर, व्यक्तिनिष्ठ रह जाता है। ऐसी दशा में मूल्यांकन में वांछित पारदर्शिता नहीं रह पाती और उनके अपेक्षित शिक्षण व्यवहारों में सुधार नहीं हो पाता है। शिक्षक-शिक्षा और प्रशिक्षु के शिक्षण अभ्यास के बीच वस्तुत: इन दिनों उपयुक्त सामंजस्य नहीं दिखायी देता।

कदाचित् इसी परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए प्रो. के.पी. पाण्डेय जी ने यह प्रस्तावित किया है कि प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के द्वारा प्रशिक्षु-अध्यापक में व्यावसायिक ज्ञान में विशेषज्ञता इस प्रकार की विकसित होनी चाहिए कि अर्जित विषय ज्ञान, व्यवहार विधि, संम्प्रेषण कला, सृजनात्मक वृत्ति आदि आयामों के बीच में सामंजस्य स्थापित कर

सके। इसी भाँति बहु संचार प्रौद्योगिकी के शिक्षण और अधिगम के क्षेत्र में युगीन प्रवृत्तियों को देखते हुए उनका महत्त्व स्थापित कर सके।

प्रशिक्षु अध्यापक अपने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को पूरा करने के पश्चात् इस दशा में आ जाए कि वे अर्जित ज्ञान, अर्जित सम्प्रेषण कलाओं, उच्चारण की शुद्धता शिक्षण की अभियोग्यता तथा छात्रों के अवधान को अपनी ओर खींचने की कला में वांछित आधिकारिता से संयोजित हो जाए तथा ऐसी दक्षता से भी मण्डित हो जायें कि वे अधिगम शिक्षण कार्य में नवीनतम प्रौद्योगिकी का सफलतापूर्वक व्यावहारिक प्रयोग कर सकें।

शिक्षण-अभ्यास का आयाम इस दृष्टि से भी अभावग्रस्त है कि प्राय: प्रशिक्षु अध्यापक अपने अभ्यास पाठों की योजना बनाते समय न तो साफ-साफ तरीके से उनके विशिष्ट उद्देश्य लिखते हैं और न ही उनकी पाठ योजनाएँ शिक्षक-प्रशिक्षुओं द्वारा जाँची जाती है। उनके शिक्षण के आवर्ती निरीक्षण की व्यवस्था भी प्राय: विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा नहीं की जाती है। फल यह होता है कि प्रशिक्षुओं के शिक्षण व्यवहारों में वांछित सुधार नहीं हो पाता।

परिणामत: आज की अध्यापक शिक्षा अनेकानेक शिक्षण अभ्यास संबंधी अभावों विसंगतियों से जकड़ी है। स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली अध्यापक शिक्षा और उनके संस्थानों के शिक्षण अभ्यास कार्यक्रम तो प्राय: मखौल की दशा को पहुँचे नजर आते हैं। इनका निराकरण प्रभावी गुणात्मक सुधार और पुर्नसंयोजन यथाशीघ्र किया जाना चाहिए।

मूल्यांकन संबंधित समस्याएँ और चुनौतियां

'NAAC' ने शिक्षा क्षेत्र में गुणवत्ता अनुरक्षण संवर्धन के आशय से पाठ्यक्रम पक्षों पर विचार करते हुए सात परिमापी बिन्दु वांछनीय बनाए हैं -

1. शिक्षण अधिगम
2. मूल्यांकन
3. शोध
4. परामर्श एवं विस्तार
5. अवस्थापन एवं अधिगम संसाधन
6. छात्र अनुपोषण एवं प्रगति
7. संगठन एवं प्रबन्धन।

अध्यापक शिक्षा संदर्भ में भी यही सात आयामी परिमापी व्यवहार्य समीचीन प्रतीत होती है। वर्तमान देश प्रदेश के शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान और उनकी नियंत्रक NCTE संस्थान भी अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता अनुरक्षण हेतु एतादृशी उपाय कर रही है।

अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में भी मूल्यांकन आयाम का बड़ा महत्त्व है। अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में सैद्धांतिक पाठ्यक्रमांश के मूल्यांकनपूर्वक प्रायोगिक ज्ञान कौशलों की परीक्षा भी समान महत्त्व के साथ की जानी चाहिए। ये दोनों परीक्षाएँ प्रायः संकलनात्मक रूप से सत्रान्त में आयोजित की जाती हैं। ये परीक्षाएँ निबन्धात्मक रूप को अधिक महत्त्व देती हैं। यद्यपि परीक्षण व्यवस्थाएँ वस्तुनिष्ठ परीक्षण के लिये जागरूक और प्रयत्नशील अवश्य दिखती हैं पर व्यवहार में इनके परिणाम कम सार्थक दिखते हैं। गहन ज्ञान, अनुप्रयोग क्षमता, संश्लेषण-विश्लेषण, अभियोग्यता एवं अन्यान्य शिक्षण संगठन कुशलताओं का समुचित मापन वर्तमान परीक्षा प्रणाली के माध्यम से नहीं हो पा रहा है। ऐसी दशा में उनकी अन्यान्य भावात्मक संयोजन अभियोग्यताओं के मूल्यांकन की बात करना तो कोरी कल्पना ही होगी। प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली प्रायः स्मृति एवं पुनः प्रस्तुति की क्षमताओं का ही परीक्षण करती है जो कि अपर्याप्त है।

इसी भाँति प्रायः सत्रीय एवं प्रायोगिक कार्य का मूल्यांकन इन दिनों प्रशिक्षणार्थी गणनाधारित था। और यथार्थ अभिक्षमताओं पर आधारित न होकर परीक्षकों तक पहुँच और दबावाधारित हो गया है जो कि पारदर्शिता को तिरस्कृत करता है। निश्चय ही अध्यापक-शिक्षा तंत्र के सामने यह एक बड़ी चुनौती है जिसका कारगर समाधान वांछनीय है।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमपरक नियोजनात्मक समस्याएँ

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 एवं संसोधित शिक्षा नीति 1992 ने 'अध्यापक शिक्षा' को एक निरन्तर प्रक्रिया बताया है, साथ ही इसने इसके सेवापूर्व और सेवाकालीन दोनों घटकों की अपृथकता रेखांकित की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्य पक्षों पर विचार करते हुए अध यापक शिक्षा संदर्भ में निम्नांकित बिन्दु व्यक्त किए गए हैं-

1. व्यावसायिक दायित्व बोध तथा अध्यापकों की सम्पूर्ण अभियोग्यताएं शिक्षा क्षेत्र में सहनीय हैं।
2. सेवापूर्व अध्यापक शिक्षा ने गतिशील अभिनव अध्यापन विज्ञान के क्षेत्र में कोई योगदान नहीं किया है अपितु इसने ह्रासमान प्रवृत्ति तत्वों को दर्शाया है।

3. अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम मुख्यत: सेवापूर्व प्रशिक्षण से जुड़े हैं। उसकी वस्तुत: कोई सुनियोजित प्रशिक्षण योजनाएँ नहीं हैं और जो वांछित संसाधनों-सुविधाओं के अभाव से ग्रसित है।

कहना न होगा **'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्'** के प्रयासों के बावजूद उक्त कमियों और अभावों से देश की अध्यापक शिक्षा न्यूनाधिक आज भी जकड़ी है जो चिन्तनीय है।

सम्प्रति हमारे शिक्षक 21वीं सदी की गतिमान प्रौद्योगिकी के दौर से गुजर रहे हैं। इन अध्यापकों ने यदि आज की प्रवृत्तियों के साथ तादात्म्य न बैठाया तो निश्चय ही वे इस समय के लिये अयोग्य हो जाएँगे। अतएव उन्हें **'इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी'** की चुनौतियों का मुकाबला करना ही होगा। अत: अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों में निश्चित ही परिवर्तन लाया जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों की निर्मिति में **'जनशक्ति नियोजन'** का उपयुक्त समावेशन किया जाए। अध्यापक शिक्षा को शैक्षिक और सामाजिक व्यवस्था से जुड़कर व्यावहारिक होना चाहिए। उपयुक्त तथ्यों के आलोक में यह सुझाव देना उपयुक्त होगा कि अध्यापक शिक्षा को नव्य इलेक्ट्रानिक मीडिया और कंप्यूटर आदि सुलभ नव्य संसाधनों से संबंधित किया जाए।

पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संबंधी समस्याएँ

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का अपना महत्त्व है। **'शिक्षाशास्त्र'** विषय में **'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग'** के द्वारा कतिपय विश्वविद्यालयों में वर्ष में एक दो बार पुनश्चर्या पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं जिनमें वित्तपोषित विभागों अथवा महाविद्यालयों से प्राध्यापक एवं शिक्षाकर्मी प्रतिभागिता करते हैं किन्तु खेद है कि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी कोई यथेष्ट व्यवस्था अब तक उन महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के लिए नहीं है जो वित्तविहीन विभागों में कार्य करते हैं। ऐसी दशा में ये अध्यापक अपने ज्ञान और प्रविधियों को अद्यतन नहीं कर पाते। निजी स्तर से भी संसाधनाभाव के कारण वे अपने ज्ञानकोश में कुछ नया नहीं जोड़ पाते। इधर चार पाँच वर्षों में स्व-वित्तपोषित इन प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या अप्रत्यासित रूप से बढ़ी है, जहाँ योग्य अध्यापकों की प्राय: बड़ी कमी है। निश्चय ही यह परिस्थिति सोचनीय है। इससे शिक्षण प्रशिक्षण की गुणवत्ता तो घटेगी ही।

आज शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन आए हैं। कंप्यूटर, दूरदर्शन, रेडियो, इंटरनेट आदि संसाधन अब सुलभ हैं, किन्तु इसका प्रयोग प्राय: हमारे निजी संस्थानों के

अध्यापक नहीं कर पाते। यह हानिकारक है। इस प्रकार विशेषकर स्व-वित्तपोषित संस्थानों के प्राध्यापक नवाचारों के ज्ञान और व्यवहार से प्रायः अनभिज्ञ और दूर ही रह जाते हैं। तात्पर्यतः आज का हमारा अध्यापक शिक्षा जगत पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संबंधी अभावों- चुनौतियों से आक्रान्त है जिस पर गम्भीर कार्यवाही नितान्त अपरिहार्य है।

विकास, शोध, मूल्य शिक्षा संबंधी समस्याएँ

सस्ते विस्तार की प्रवृत्ति से आक्रान्त होने के कारण आज का सम्पूर्ण अध्यापक शिक्षा तन्त्र सही विकास पथ से दूर है। राष्ट्र और समाज, अध्यापक समुदाय से विकास के नेतृत्व की बड़ी अपेक्षायें रखता है किन्तु हमारी 'अध्यापक शिक्षा' द्वारा प्रसूत ये प्राध्यापक और अध्यापक इस निष्कर्ष पर सही नहीं उतर पा रहे हैं। विस्तार सेवाओं के क्षेत्र में तो ये लगभग शून्य की दशा में हैं।

'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्' गत लगभग 14 वर्षों से अध्यापक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में नवाचारों और शोध को प्रोन्नत करने के प्रयास कर रही है किन्तु कष्ट है कि हमारे अध्यापक शिक्षा संस्थान इन आयामों के क्षेत्र में यथेष्ट प्रगति नहीं कर पा रहे हैं वस्तुतः अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त समस्या को दूर करने के लिये नवाचारिक प्रयोग एवं क्रियात्मक अनुसंधान का आश्रय आवश्यक है पर इन क्षेत्रों की सक्रियता में आरामप्रिय कार्य संस्कृति बड़ी बाधा है। स्वाभाविक है कि शिक्षक प्रशिक्षक को नवाचारिक प्रयोगों एवं नव्य अनुसंधान के लिये कार्यकारी ढंग से प्रेरित किया जाए। सभी संबंधित संस्थान विशेषकर स्व-वित्तपोषित शिक्षक शिक्षा संस्थान एतदर्थ वांछित सभी आधुनिकतम संसाधन और सुविधाएँ उन्हें उपलब्ध करायें तभी अभीष्ट की सिद्धि होगी।

अध्यापक-शिक्षा संस्थानों में अभावग्रस्त शिक्षण-प्रशिक्षण अधिगम विधियाँ

वर्तमानकालीन भारत में अध्यापक शिक्षा संस्थानों में अनेक निर्देशों के बावजूद शिक्षक-प्रशिक्षण-अधिगम-विधियों, प्रविधियों में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाया है। वस्तुतः शिक्षण विधियाँ अध्यापक समुदाय को इस योग्य बनाती हैं कि वे अपनी कक्षाओं में क्यों, कैसे, क्या, कब, कितना आदि प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ सकें। इसी भाँति प्रशिक्षण के द्वारा प्रशिक्षणार्थियों में मुख्यतया विभिन्न अभियोग्यताओं, कौशलों का विकास किया जाता है। अधिगम छात्रों में ज्ञान, क्रिया-कुशलताओं, प्रस्तुति-प्रविधियों, बोध-रसानुभुति आदि का विकास करता है। कतिपय विशिष्ट संस्थानों को छोड़कर, भारत के अधिकांश अध्यापक शिक्षा संस्थानों में इन बातों का आज भी यथेष्ट ध्यान नहीं रखा जाता है। छात्रों

को अधिकांशत: व्याख्यान विधि के द्वारा ही पढ़ाया जाता है। शिक्षण में प्राय: परस्पर संवादी रणनीतियों विधियों का प्रयोग नहीं किया जाता जबकि संगोष्ठी पद्धति, समूह विमर्श विधि, कार्यशाला विधि, ट्यूटोरियल विधि, अनुरूपी विधि, खेल विधि आदि का प्रयोग भी आवश्यक है। इनका अनुप्रयोग प्राय: अधिक समय और अधिक संस्थानों की अपेक्षा करता है। आज के भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थान इनमें असमर्थ दिखाई देते हैं जिसका परिणाम गुणवत्ता में बराबर ह्रास होता परिलक्षित होता है। उत्तर प्रदेश समेत देश के अन्य कई राज्यों में ऐसा ही देखा जा रहा है जो निश्चय ही चिन्तनीय है।

अध्यापक शिक्षा : उदीयमान चुनौतियाँ

भारतीय एवं प्रदेशीय उच्च शिक्षा के समक्ष बड़ी चुनौतियाँ, नई नीतियों, रणनीतियों और क्रान्तिकारी प्रकृति के कार्यक्रमों को बनाने की है। इनमें एक क्षेत्र तो गुणात्मक सुधार का है, दूसरा समानता लाने का है, तीसरा मूल्यों और दायित्वशीलता के विकास का है, चौथा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रकृति के समन्वय का है और पाँचवा विकास की प्रक्रिया में सबको जोड़ने का है। इनके निरूपण के लिये श्री जे.पी. नाइक के अग्रांकित त्रिकोण को याद करना होगा, वह त्रिकोण है गुणवत्ता, परिमाण और समानता स्पष्टत: प्रयास सबको गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने का है।

यह भी संकेतव्य है, जैसा कि 2007 के अंक में स्पष्ट किया गया था- कि विगत अनेक दशकों में प्रौद्योगिकी एवं प्रौद्योगिकी नवाचारों ने क्रमश: जीवन की गुणता में परिवर्तन ला दिया है। ये परिवर्तन महत्वपूर्ण प्राय: सभी क्षेत्रों में आये हैं– शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग और सरकार। 21वीं शताब्दी मोटे तौर से ज्ञान शताब्दी काल के रूप में पुकारी गयी है। प्रत्येक राष्ट्र ने इसके अनुसार बढ़ती प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति को देखते हुए अपनी सूचना अवस्थापना सुविधाएँ बढ़ाई हैं। अपनी शोध एवं नवाचारी प्रक्रियाएं तीव्रतर बनायी हैं। शिक्षा और आजीवन अधिगम को बढ़कर महत्व प्रदान किया है। निश्चय ही इन बातों का प्रदेश की शिक्षक-शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

यह पूर्णत: स्वीकार किया गया है कि नव्य ज्ञान का सृजन मुख्यत: शिक्षा व्यवस्था के सशक्तिकरण, देशी शोध के प्रोन्नयन, प्रयोगशालाओं के अभिनवीकरण साथ ही विदेशी स्रोतों से प्राप्त ज्ञान की खुली पहुँच, उनके निवेश और उनकी प्रौद्योगिकी के समुचित अनुप्रयोग पर निर्भर करता है। यह भी सुस्पष्ट है कि ज्ञान और बुद्धिमत्ता ही कल की अर्थव्यवस्था का स्वरूपण करेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में विश्वविद्यालयों की भूमिका बहुआयामी

है, सुयोग्य और नवीनतम ज्ञान-विज्ञान से सुसज्जित प्राध्यापक ही इसमें बड़ी भूमिका अदा करेंगे। ऐसी दशा में यह अपेक्षित है कि निम्नलिखित सुझाव अपनाए जाएँ-

1. नव्य प्रौद्योगिकी अपनाई जाए।
2. विशेषज्ञों का सहयोग लिया जाए।
3. नवाचारों को प्रोत्साहित किया जाए।
4. प्रौद्योगिकी में देश प्रदेश से अनुकूलित परिवर्तन लाया जाए।
5. ज्ञान का देश-कालापेक्षी प्रबंधन किया जाए।
6. प्रशिक्षण को महत्ता दी जाए।
7. रोजगारोन्मुखता को दृष्टिगत रखा जाए।
8. नव्य उद्यमिता विकसित की जाए।
9. दूरसंचार साधनों का अधिकाधिक अनुप्रयोग किया जाए।
10. भूमण्डलीकृत प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखा जाए।
11. विश्वविद्यालय और शिक्षक-शिक्षा के संस्थान अन्य संस्थानों-उद्योगों से जोड़े जाएँ।
12. उत्पादकता और पुरस्कार नीति को सम्बलित किया जाए।
13. सबका समन्वित निवेश-अनुप्रयोग किया जाए।

इन सुझावों के अमल के लिए देश-प्रदेश की शिक्षा और प्रशिक्षण व्यवस्था में अनुसारी परिवर्तन लाया जाए। मुखर भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, नित नव्य विकसित प्रौद्योगिकी, भौतिक सुख सुविधा उन्मुखी प्रवृत्ति, मुक्त विचरण व्यापार के कारण आज का भारतीय समुदाय भी आन्दोलित है। सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता आदि नवाग्रही प्रवृत्तियों के प्रचलन का प्रभाव हमारी शिक्षा पर छा रहा है। हमारी अध्यापक-शिक्षा भी इसके अनुरूप स्वरूपित होने को बाध्य है किन्तु उक्त प्रवृत्तियों और कतिपय अन्य परिवर्तित दशाओं के कारण हमारी वर्तमान अध्यापक-शिक्षा अधोलिखित चुनौतियों का सामना कर रही है जो निम्नलिखित है-

1. अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में भारतीय मूल्यादर्शों और सांस्कृतिक प्रतिमानों को फिर से स्थापित किए जाने की चुनौती।
2. युगीन विकेन्द्रीकरण, भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण की प्रवृत्तियों को समुचित रूप से समंजित करने की चुनौती।

3. बढ़ती बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी को देखते हुए स्वीकार्य संसाधनों को उपलब्ध करने से संबंधित चुनौतियाँ।
4. बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट असंख्य औद्योगीकरण आदि से निपटने की चुनौतियाँ।
5. राष्ट्रीय अस्मिता, संवैधानिक दायित्व, मानवाधिकार संरक्षण, अधिकार कर्त्तव्य बोध, नेतृत्व गुण विकासपरक कुशलता वृद्धि आदि से संबंधित चुनौतियाँ। इस सन्दर्भ में अध्यापक-शिक्षा की भूमिका का निर्धारण।
6. अध्यापक शिक्षा में अभिनव मूल्यों को समाहित करने की चुनौतियाँ।
7. इस परिक्षेत्र में वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष मूल्यांकन मान को अनुरक्षित किये जाने संबंधी चुनौती।
8. आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृत्ति और व्यवहार से निपटने और उन्हें यथापेक्षित नियंत्रित करने की चुनौती।
9. अभिनव शिक्षण पद्धतियों, शिक्षण प्रतिमानों तथा व्यूह रचनाओं के अनुप्रयोग की चुनौती।
10. विशिष्ट शिक्षण कौशलों और क्रियात्मक अनुसंधान कार्य विकास की चुनौती।
11. शैक्षिक तथा शिक्षण प्रौद्योगिकी के प्रचलन एवं मुक्त अधिगम, स्व अधिगम, आत्म-प्रेरित तथा आत्म-निर्देशित अधिगम, व्यवहार में त्वरित परिवर्तनमूलक शिक्षण अधिगम तकनीक आदि के व्यावहारिक समन्वय संबंधी चुनौतियाँ।
12. प्रजातांत्रिक प्रशासन, समशिक्षा अवसर समुपलब्धि तथा समन्वयात्मक प्रबन्धन को व्यावहारिक बनाये जाने से संबंधित चुनौतियाँ।
13. देशकालापेक्षी भावात्मक प्रशिक्षण-विस्तार को बढ़ाने के अवसर उपलब्ध कराए जाने तथा शिक्षक प्रशिक्षण की गुणात्मकता को संरक्षित करने से संबंधित चुनौतियाँ।
14. शिक्षण प्रशिक्षण की नव्य प्रौद्योगिकी प्रविधियों, यंत्रों-उपकरणों को अध्यापक शिक्षा परिक्षेत्र में समावेशित करने की चुनौतियाँ।

इस कारण कतिपय और चुनौतियाँ भी हैं जो समाधान की अपेक्षा करती हैं। वैसे भी अपरिहार्य परिवर्तनकारी दशाओं के कारण समय-समय पर नई-नई चुनौतियाँ सामने आती रहेंगी, जिनके समाधान के प्रति अध्यापक शिक्षा जगत को सदैव उद्यत रहना पड़ेगा।

अध्यापक-शिक्षा जगत की चुनौतियाँ एवं समस्या-समाधान के संदर्भ में कतिपय सुझाव

सारांशत: आज की भारतीय अध्यापक शिक्षा में उत्कृष्टता, प्रवीणता और समानता के सिद्धांतों की व्यवहार-भूमि में बढ़ी निष्ठा के साथ प्रतिष्ठा की जानी चाहिए। यह अपेक्षा वस्तुत: नई शिक्षा नीति-1986 के द्वारा उच्च शिक्षा जगत से की गयी है। 'सर्व शिक्षा अभियान' की अनिवार्यता और उसकी साकारता के निहितार्थ से इन दिनों वैसे भी बड़ी संख्या में अध्यापकों की आवश्यकता पड़ी है। इस उद्देश्य की परिपूर्ति के आशय से विश्वविद्यालयों द्वारा एन.सी.टी.ई. की अनुमति से अप्रत्याशित संख्या में बी.एड्. कॉलेजों को मान्यता दी गयी है, पर ऐसा करने से निश्चय ही गुणता हासोन्मुख नजर आ रही है। शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध, विस्तार शिक्षा सबसे संबंधित समस्याएँ बढ़ गई हैं। प्रशिक्षण पाने और देने दोनों के व्यय निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। स्व-वित्तपोषित पाठ्क्रम/संस्थान तो बढ़ रहे हैं पर इनकी गुणवत्ता इनका व्यवस्थित संचालन, इनकी वांछित उत्पादकता-प्रतिफल हीन-दशाओं को प्राप्त हो रहा है अतएव सेवा नियोजन अवसरों को दृष्टि में रखते हुए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का संचालन अनुमत किया जाना चाहिए। महिला समानता हेतु भी अध्यापक शिक्षा के ढ़ाँचे को तैयार किया जाना चाहिए। सघन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आयोजना द्वारा श्रेष्ठतम आत्मा वाला शिक्षक समुदाय तैयार किया जाना सर्वथा अभीष्ट है। अत: अभिनव शैक्षिक प्रौद्योगिकी की सहायता लेते हुए सुनियोजित अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा निष्ठापूर्वक सभी उदीयमान आगत समस्याएँ समाधानित की जानी चाहिए। केन्द्र, राज्य सरकारों के साथ निजी क्षेत्र के अग्रणी समृद्ध जन/संस्थाएँ सभी इस फलित अनुष्ठान में भरसक हाथ बंटाएँ। आशा की जानी चाहिए कि हमारी प्रचलित अध्यापक-शिक्षा अवश्य ही क्रमश: वांछित सुधरे पथ पर गतिमान हो सकेगी। उच्च शिक्षा किसी भी राष्ट्र को मुख्यधारा में जोड़ने के लिये मूल आवश्यकता है। इसी के बल पर कोई भी राष्ट्र टिकाऊ ऊर्जा की प्राप्ति कर सकता है और राष्ट्र को प्रगति के शिखर पर पहुँचा सकता है। भारत 2020 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है, इस प्रक्रिया की पूर्णता उच्च शिक्षा ही कर सकती है और इसमें निजी क्षेत्र बड़ी भूमिका अदा कर सकते हैं।

भारत आज जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के पथ पर है। जबसे उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण ने उच्च शिक्षा क्षेत्र में पैर पसारे हैं तब से उच्च शिक्षा के प्रति सभी भारतीयों का आकर्षण बढ़ा है। आज समाज के दलित और वंचित

सभी उच्च शिक्षा तक अपनी पहुँच कर रहे हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि निजी उच्च शिक्षा के संस्थान बराबर खुलते जाएँ और जिसमें विश्वस्तरीय गुणत्ता के मानव संसाधित किए जा सकें।

इस परिप्रेक्ष्य में शासन को निजी उद्यमियों के साथ बढ़कर हाथ बंटाना चाहिए। शासन ऐसे कानून बनाए जिससे निजी उद्यमी एक ओर तो प्रोत्साहित होते चलें, दूसरी ओर वे बदले में कुछ लाभ भी संतोष के नाम पर पाते रहें। यह मान्य है कि छात्र-हित, लोकहित, राष्ट्रहित सर्वोपरि है, पर इसके लिये संयुक्त समन्वित और पहलपूर्ण कदम आगे बढ़ाएँ, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी उद्यमिता में हाथ बटाएँ और शासन इसमें अपना भरपूर सहयोग दे।

आशा की जानी चाहिए कि निजी उच्च शिक्षा का यह परिदृश्य वर्ष 2020 तक भारत को एक विकसित और समृद्ध राष्ट्र बनाने में एक बड़ी भूमिका निभाएगा। इसके लिए अध्यापक समाज के सभी लोगों को तथा अध्यापक शिक्षा से सरोकार रखने वाले अध्यापकों को आगे आना होगा, तभी हम अध्यापक शिक्षा की चुनौतियों का सामना कर सकेंगे और उसकी समस्याओं का समाधान उचित रूप से ढूँढ सकेंगे।

संदर्भ

अदावल, सुबोध और उनियाल, माधवेन्द्र, 1974, *भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथा प्रवृत्तियाँ,* लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

रजा, मुनीश, 1991, *हायर एजूकेशन इन इडिया : रिट्रास्पेक्ट एण्ड प्रॉस्पेक्ट* नई दिल्ली, A.I.U.

शर्मा, डा. आर.ए. और डा. चौधरी शिखा, 1998, *अध्यापक शिक्षा,* मेरठ, ईगल बुक्स इंटरनेशनल,

भटनागर, सुरेश, 2000, *आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ,* मेरठ, मेरठ पब्लिशिंग हाउस,

रस्तोगी डा. कृष्ण गोपाल और मित्तल एम एल, 1993, *भारतीय शिक्षा का विकास और समस्याएँ,* मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन

कपिल डा. एच.के., 1995, *अनुसंधान विधियाँ-व्यवहारपरक विज्ञानों में,* आगरा, हरप्रसाद भार्गव,

गुड, कार्टर बी., 1985, *डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन,* न्यूयार्क, मैक्ग्राहिल बुक कम्पनी।

कृपाल, डॉ प्रेम, 1990, *ए डिकेट ऑफ हायर एजूकेशन इन इंडिया,* नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि.,

आजाद, जे.एल., 1991, *फाइनेंसिंग ऑफ हायर एजूकेशन इन इंडिया,* नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि.,

तिवारी, डी. डी., 1980, *थाट्स ऑन एजूकेशन,* इलाहाबाद, चुग पब्लिकेशन्स,

ओड, एल.के. तथा अग्निहोत्री, रवीन्द्र, 1982, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, जयपुर, कॉलेज बुक डिपो,

मलैया, विद्यावती, 1966, *शिक्षक प्रशिक्षण,* जयपुर, विनोद पुस्तक मन्दिर

माथुर, बी. एस., 1980, *टीचर एजूकेशन सम थाट्स,* अम्बाला सिटी, अग्रवाल प्रकाशन,

कुदेशिया, उमेश चन्द्र, 1998, *शिक्षा प्रशासन,* आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

चौबे सरयू प्रसाद, 1975, *ए सर्वे ऑफ एजूकेशनल प्राब्लम्स एण्ड एक्सपेरीमेंट्स इन इंडिया,* इलाहाबाद, किताब महल,

शुक्ल, डॉ आर. एस., 1978, *इमर्जिंग ट्रेड्स इन टीचर एजूकेशन,* इलाहाबाद, चुग पब्लिकेशन्स

त्यागी, जी. एस. डी., 2002, *आधुनिक शिक्षा का विकास,* आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

दूबे, आर. के., 1965, *टूवर्डस डेमोक्रेसी एण्ड चेंज इन एजूकेशन,* इलाहाबाद, चुग पब्लिकेशन्स

नाइक, जे. पी. और सैयद नुरूल्ला, 1970, *भारतीय शिक्षा का इतिहास,* कलकत्ता, मैकमिलन पब्लिकेशन

नायर, डी. पी., 1980, *टूवर्डस ए नेशनलसिस्टम ऑफ एजूकेशन,* दिल्ली, मित्तल प्रकाशन।

पाण्डेय, रामशकल, 1990, *शैक्षिक प्रगति विशेषांक,* आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।

मुखर्जी, एस. एन., 1965, *एजूकेशनइन इण्डिया, टूडे एण्ड टुमारो,* बड़ौदा, आचार्य बुक डिपो।

मिश्र, आत्मानन्द, 1960, *शिक्षा का वित्त प्रबंधन,* कानपुर, 'ग्रन्थन राम बाग'।

सफाया, रघुनाथ, 1972, *डेवलपमेंट प्लानिंग एण्ड प्राब्लम्स ऑफ इन्डियन एजूकेशन,* दिल्ली, धनपतराय प्रकाशन।

एसोसिएशन आफ इंडियन-युनिवर्सिटीज, 1990, *टीचर एजुकेशन इन इंडिया,* नई दिल्ली, एआईयू हाउस

सिंह, डॉ कमल, 2010, अतिथि सम्पादक, सम्पादकीय, स्पेशल ऑन हायर

एजुकेशन : *न्यू चैलेंज एंड इमरजिंग रोल्स,* वाल्यूम 48, नं. 28, जुलाई 12 एंड 18

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति एवं सामाजिक अनुवर्तिता का अध्ययन

प्रवीन देवगन* और **आकांक्षा अग्निहोत्री***

सारांश

आधुनिक समय में आधुनिकीकरण के भारतीय परिपेक्ष्य में विभिन्न आयामों (शिक्षा, अभिभावक किशोर संबंध, राजनीति, स्त्रियों की स्थिति, विवाह, धर्म, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र) के सन्दर्भ में किशोरों का दृष्टिकोण अलग बन गया है। परिवार सदस्यों के विचारों से पृथकता एवं मित्रगणों के साथ समान विचारधारा के कारण किशोरों में अनुवर्तिता का प्रत्यय जन्म लेता है। प्रत्येक समाज में किशोर सामाजिक अनुवर्तिता को भी प्राप्त करना चाहते हैं। समाज में स्वीकृति प्राप्त करने के लिये सर्वप्रथम अपने मित्रगणों से साथ उनके समान आचरण एवं व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। किशोर अपने मूल्यों का निर्धारण भी समूह के नेता के मूल्यानुसार कर अपने व्यक्तिव का निर्माण करते हैं। प्रस्तुत शोध में प्रमुख उद्देश्यों को लिया गया है, (i) किशारों की आधुनिकता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन, (ii) किशोरों की आधुनिकरण के प्रति अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। अध्ययन के लिए वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। शोध कार्य के लिए विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर के द्वितीय वर्ष के 480 किशोरों को ही सम्मलित किया है। आधुनिकीकरण के मापन हेतु एस.पी. अहलूवालिया एवं ए.के. कालिया द्वारा निर्मित ए.के. कामप्रिहेन्सिव मार्डनाइजेशन इन्वेन्ट्री, शोध में परिणाम हेतु दोनों प्रकार की सांख्यकीय प्रविधियों, वर्णनात्मक एवं निष्कर्षात्मक प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। आधुनिकीरकण के मापन हेतु प्रस्तुत शोध में विभिन्न आयामो को चयनित किया गया है जैसे–शिक्षा, अभिभावक–किशोर संबंध, धर्म, राजनीति, स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर, विवाह, सामाजिक–सांस्कृतिक

*दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

क्षेत्र इत्यादि। वर्तमान शोध में आँकड़ों के सांख्यकीय विश्लेषण, विवेचना से उपलब्धियों के आधार पर प्रमुख निष्कर्ष प्रकाशमान हुए। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रादुर्भाव के कारण हमारे समाज में आधुनिकीकरण का प्रत्यय तीव्र गति से प्रसारित है। प्रत्येक किशोर अपने स्तर से स्वयं को आधुनिक परिलक्षित करने में तत्पर पाया गया। दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों ने डॉ. भीमराम अम्बेडकर विश्वविद्यालय के किशोरों की अपेक्षा अधिक आधुनिक प्रवृत्ति को परिलक्षित किया।

भूमिका

राष्ट्र का निर्माण विभिन्न सूक्ष्म समूहों के सहयोग से सम्भव होता है। प्रत्येक समूह मानव द्वारा निर्मित होता है व्यक्ति को अपनी शैशवास्था से ही परिवार, मित्र, विद्यालय एवं समाज द्वारा विभिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं। वह समाज की वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण अपने अनुभव के आधार पर करता है। किशोर अनेक मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, परिवर्तनों के साथ साम्य स्थापित करके स्वयं के चरित्र-निर्माण, व्यक्तिव-निर्माण एवं आर्थिक सबलता के लिये भी अग्रसर होता है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति भारत में भी आधुनिकीकरण का प्रत्यय प्रस्फुटित हुआ है, जो कि परम्परागत जीवनस्तर एवं विचारों में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है। नवीन तथ्य, धारणा, मानक विचारधारा को शीघ्रतम आत्मसात करने की प्राप्ति किशोरों में परिलक्षित हो रही है। कोडक (2003) के अध्ययनानुसार-''आधुनिकीकरण का अर्थ मानव की सोच एवं जीवनयापन में परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया से है।'' आधुनिक काल में अधिकांशतः शिक्षण संस्थान अपने विद्यार्थियों को प्रचुर मात्रा में अवसरों की प्राप्ति, एवं सफलता को प्रदान कराते हैं। शिक्षा, शैक्षिक अवसरों एवं व्यवसायिक चयन के परिवार, पारिवारिक वातावरण, समाज एवं धर्म का सम्पूर्ण प्रभाव होता है। व्यवसायिक एवं कार्यशील शिक्षा आधुनिक काल में एक आवश्यक आवश्यकता बन गयी है।

किशोरावस्था के पर्दापण से ही किशोर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना में अग्रसरित हो जाते है। उत्तेजना के इस कठिन काल में किशोरों को अभिभावक एवं उनकी भावनाएँ शत्रु की भांति प्रतीत होने लगती है। चूंकि किशोर अपने सही अथवा गलत सभी निर्णय स्वयं करना चाहते हैं। कोलिन्स (2000) के मतानुसार ''अभिभावकों को अपने बच्चों के स्वतन्त्र व्यक्तिव की भावना के साथ समायोजित होना आवश्यक है, एवं उनके साथ समानता का व्यवहार करना आवश्यक है।'' समाज में अपनी एक स्थिति के

निर्धारण के लिये किशोर अपने स्तर से स्वयं में नेतृत्व के गुणों का विकास करना प्रारम्भ कर देता है, जिसके फलस्वरूप वह विश्वविद्यालय के समय से ही अपने राजनैतिक विचारों को स्पष्ट करने लगता है। किशोरों के लिए राजनैतिक क्षेत्र प्रारम्भ से ही सदैव उत्साहपूर्वक रहा है। एडन (2009) के मतानुसार ''किशोरों में संज्ञानात्मक विकास के साथ राजनीति को विचारधारा के प्रति रुचि जागृत होती है।'' आधुनिकता के कारण आजकल अनेक नेता ऐसे है जो किशोरों के आर्दश हैं। किशोर उनकी जीवन शैली को अपना कर स्वयं को समाज में प्रतिष्ठत अनुभव करते है। आधुनिक किशोर अपनी प्रवृत्ति में परिवर्तन कर रहे हैं समानता के कारण युवतियां जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना विकास कर रही हैं, एवं पुरुष उनके विकास में अपना सहयोग प्रदान कर रहे हैं। महिलाओं को राजनीति में उच्च स्थान प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वे घर-परिवार एवं समाज की समस्याओं को समझती है एवं उनका निराकरण भी उचित प्रकार से करती हैं।

आधुनिकीकरण की विचारधारा से प्रभावित होकर कुछ किशोरियों का मत है कि विवाह उनकी उन्नति में बाधक है। वर्तमान काल में विवाह संबंध को स्थापित करने के लिये मित्रता प्रथम सोपान है एवं अभिभावकों द्वारा तय किये गये संबंधों का स्थान व्यक्तिगत चयन ने ग्रहण कर लिया है। युवा वर्ग का मत है कि लड़के-लड़कियों को विवाह करने के लिये अपने साथी के चयन की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये। क्योंकि धार्मिक मान्यता एवं अनुष्ठान ही किशोरों में संस्कारों का निर्माण और धर्म के प्रति जागरुकता उत्पन्न करवाते हैं।

किशोर यह अनुभव करते हैं कि यदि उनका सम्पूर्ण विकास भली प्रकार से हो रहा है तो ईश्वर की कृपा-दृष्टि प्राप्त हो रही है एवं विकास के अभाव में यह परिलक्षित होता है कि ईश्वर के द्वारा दण्ड प्रदान किया जा रहा है। धार्मिक परिवेश से जुड़े हुये किशोर अपने सांस्कृतिक वातावरण से भी सम्बन्धित रहते हैं। क्योंकि अनुवर्तिता को किसी किशोर के व्यवहारगत परिवर्तन के रूप में अनुवर्तित व्यवहार में किशोर प्रमुख तीन कार्यों समूह सदस्यता, आज्ञाकारिता, अस्तिव निर्माण को प्रमुखता प्रदान करते हैं।

अनुवर्तिता आधुनिक काल में आवश्यक आवश्यकता बन गयी है। अपने व्यवहार को भी दूसरों के अनुसार परिवर्तित कर सर्वप्रिय बनना चाहतें हैं, अनुवर्तिता संबंधी व्यवहारगत लक्षण ही निहित रहता है। विज्ञान के नये-नये अनुसंधानों के फलस्वरूप तीव्र गति से विकसित होने वाली सभ्यता के अनुकूल मानव स्वयं को अभियोजित नहीं कर पा रहा था। इसी कारण उसके चिंता, द्वन्द, कुंठाएं उत्पन्न हो रही हैं। इसी चिन्ता एवं द्वन्द के निदान हेतु मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरकों एवं मूलभूत आवश्यकताओं पर बल प्रदान किया।

किशोरों से प्रत्येक सदस्य को अनेक अपेक्षाएं होती है एवं सभी अपेक्षाओं को पूर्ण कर पाना किशारों के लिये असंभव प्रतीत होता है। यह माना जाता है कि किशोर वार्तालाप में, ताकत में, दूसरों के साथ व्यवहार करने के तरीकों में, बुद्धि में, अन्तव्यौक्ति तकनीकि में, सकारात्मक अभिवृत्ति में, दूसरों की सहायता सभी क्षेत्रों में परम्परागत समायोजन प्रदर्शित करें तभी उनका सर्वांगीण विकास संभव हो पाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन करना लैंगिक भेद के आधार पर किशारों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशारों की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन करना। लैंगिक भेद के आधार पर किशारों की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. दयालबाग शिक्षण संस्थान हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण विविध आयामों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना।
4. डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण विविध आयामों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना।
5. किशोरों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना।
6. किशोरियों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशारों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता। लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
2. डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग संस्थान के किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता। लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
3. दयालबाग शिक्षण संस्थान हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण विविध आयामों के मध्य कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।

4. डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण विविध आयामों के मध्य कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता।
5. किशोरों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।
6. किशोरियों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

अध्ययन का सीमांकन

- प्रस्तुत अध्ययन डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान तक ही सीमित रखा गया है।
- अध्ययन में केवल विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर के द्वितीय वर्ष के 480 विद्यार्थियों को ही सम्मलित किया गया है।
- आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृत्ति का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक अनुवर्तिता पर ही देखा गया है।

अध्ययन के चर

स्वतंत्र चर- आधुनिकीकरण अभिवृत्ति

आश्रित चर- किशोरों की सामाजिक अनुवर्तिता

नियंत्रित चर- किशोरावस्था

विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर का द्वितीय वर्ष

परिमित चर- लैंगिक भेद-किशोर/किशोरियां

अध्ययन की विधि

अध्ययन को पूर्ण करने हेतु वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। क्योंकि प्राचीन विचारधारा एवं दृष्टिकोण से नवीन मानकों की स्थापना इसी के द्वारा सम्भव है।

न्यादर्श का चयन

सम्पूर्ण समाज में किशोरों की अभिवृत्ति को ज्ञात करना असम्भव है। विभिन्न स्तरीय विभाजन के पश्चात् याद्वच्छिक रूप से किशोरों को चयनित करना आवश्यक है, क्योंकि शोध के परिणाम विश्वसनीय एवं वैध प्राप्त हो इसके लिये प्रस्तुत अध्ययन में वर्गीकृत यादृच्छिक विधि से स्नातक स्तर के द्वितीय वर्ष के किशोरों को चयनित किया गया।

उपकरण का चयन

आधुनिकीकरण के मापन हेतु **एस.पी. अहलूवालिया** एवं **ए.के. कालिया** द्वारा निर्मित **ए.के. कॉमप्रिहेन्सिव मॉर्डनाइजेशन इन्वेन्ट्री :** इसके अन्तर्गत सात आयामों शिक्षा, अभिभावक-किशोर संबंध, राजनीति, स्त्रियों की स्थिति, विवाह, धर्म एवं सामाजिक सांस्कृतिक के प्रति किशोरों की परिवर्तित अभिवृत्ति को मापा गया है। प्रश्नावली में कुल 49 प्रश्न हैं। प्रत्येक आयाम से सम्बन्धित सात प्रश्न हैं। इस परीक्षण से सम्पूर्ण औसत विश्वसनीतया 0.82 प्राप्त हुयी जो कि अत्यधिक उच्च है। विश्वसनीयता 0.867 ज्ञात की गयी। इस प्रकार मापनी की वैधता 0.530 से 0.620 तक ज्ञात हुई।

सांख्यकीय प्रविधियाँ

वर्णात्मक एवं निष्कर्षात्मक सांख्यकीय प्रविधियाँ का प्रयोग शोध में किया गया है।

विवेचना एवं विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में प्राप्त सभी परिणामों को शोधार्थी द्वारा उद्देश्यों के पूर्व निर्धारण के क्रम में ही विवेचना एवं विश्लेषण प्रदान किया गया।

उद्देश्य-1 : किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन

1.1 डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन

तालिका-1

क्षेत्र	डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (240)		दयालबाग शिक्षण संस्थान (240)		सांख्यिकीय मान	
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता
आधुनिकीकरण अभिवृत्ति	177.70	12.209	181.67	10.145	3.875	p>.05

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

**0.05 एवं 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक

शोध के प्रथम उद्देश्य किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन के अन्तर्गत दयालबाग शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत किशोर 181.67 मध्यमान प्राप्त कर डा. भीम राव अम्बेडकर विश्व विद्यालय के किशोरों की तुलना में अधिक आधुनिकीकरण की अभिवृत्ति को प्रदर्शित कर रहे हैं। मानक विचलन के सांख्यिकीय विश्लेषण से प्रतीत होता है कि

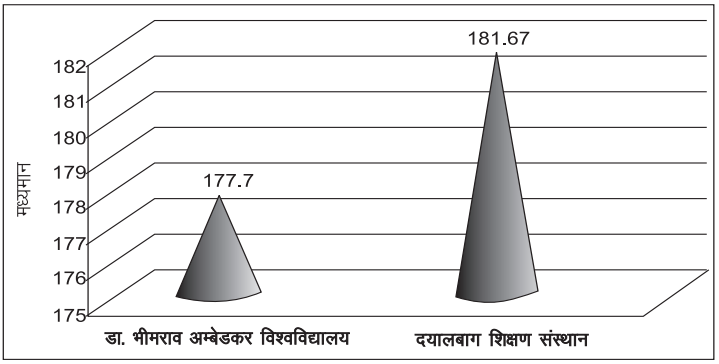

डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के किशोर में सर्वाधिक मानक विचलन 12.209 प्राप्त हुआ। तालिका में प्रदर्शित टी मान से ज्ञात होता है कि प्राप्त टी मान (3.875) .05 एवं .01 सार्थकता स्तर पर 238 मुक्तांश के लिए ही तालिका में निर्धारित मान से अधिक होने के कारण सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थकता को प्रदर्शित कर रहा है।

1.2 : लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-2

क्षेत्र	किशोर (190)		किशोरियां (290)		सांख्यिकीय मान	
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता
आधुनिकीकरण अभिवृत्ति	175.57	12.170	182.38	9.984	6.691	p>.05

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

**0.05 एवं 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक

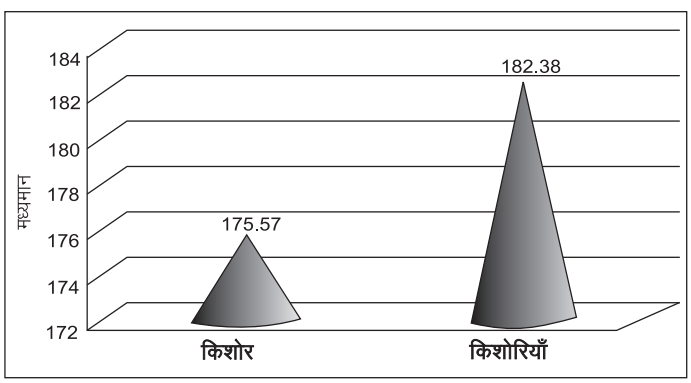

द्वितीय तालिका लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति को ज्ञात करती है। किशोरियां 182.38 माध्यमान के कारण किशोरों की तुलना में अधिक आधुनिक अभिवृत्ति रखती हैं। किशोरों की मानक विचलन 12.170 प्राप्त हुयी जो किशोरियों की तुलना में अधिक है एवं प्राप्ताकों की अधिक उच्चतम् एवं निम्नतम सीमा को प्रदर्शित कर रही है। अवकालित ही मान (6.691) .05 एवं .01 सार्थकता स्तर पर 238 स्वतत्रंता के लिए निर्धारित टी मान से अधिक होने के कारण सार्थकता, महत्ता को निर्धारित करता है। परिणाम के रूप में कहा जा सकता है कि दोनो विश्व विद्यालयों में प्राप्त मध्यमानों में अन्तर तथा लैंगिक भेद के आधार पर प्राप्त मध्यमानों में अन्तर नहीं है। इस परिणाम की सांख्यिकीय रूप से सार्थकता है।

उद्देश्य-2 : डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-3

क्षेत्र	डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (240)		दयालबाग शिक्षण संस्थान (240)		सांख्यिकीय मान	
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता
सामाजिक अनुवर्तिता	11.11	3.272	11.03	3.114	0.257	p>.05

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
**0.05 एवं 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक

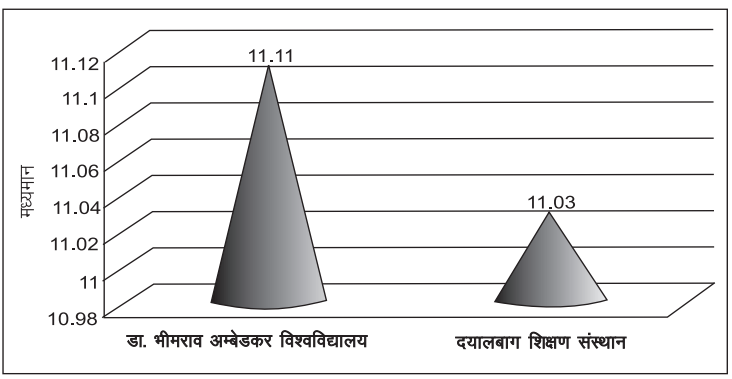

किशोरों की आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृत्ति का सामाजिक अनुवर्तिता का प्रभाव ज्ञात किया गया। तालिका में डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण

संस्थान तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि डा. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के किशोर 11.11 मध्यमान प्राप्त कर आंशिक रूप से ही दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों से अग्रसरित हैं। दोनों विश्वविद्यालयों के किशोर लगभग समान सामाजिक अनुवर्तिता के प्रत्यय को प्रदर्शित कर रहे हैं।

प्राप्तांकों की विचलन शीलता के लिये गणित मानक विचलन भी डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान क्रमशः (3.272, 3.114) समान प्रवृत्ति को ही समर्थन प्रदान कर रहा है। मध्यमान एवं मानक विचलन में प्राप्त अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी मान की गणना की गयी। प्राप्त टी मान (.257), 238 मुक्तांश पर ही तालिका में निर्धारित मान से कम होने के कारण .05 स्तर पर असार्थक प्राप्त हुआ। निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि यह सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वहीन है एवं मध यमानों में अंतर भी संयोगवश है। अतः किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

2.1 : लैंगिक भेद के आधार पर किशोंरों की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-4

क्षेत्र	किशोर (190)		किशोरियां (290)		सांख्यिकीय मान	
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मान	सार्थकता
सामाजिक अनुवर्तिता	11.36	2.931	10.88	3.342	1.598	p>.05

*0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

**0.05 एवं 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक

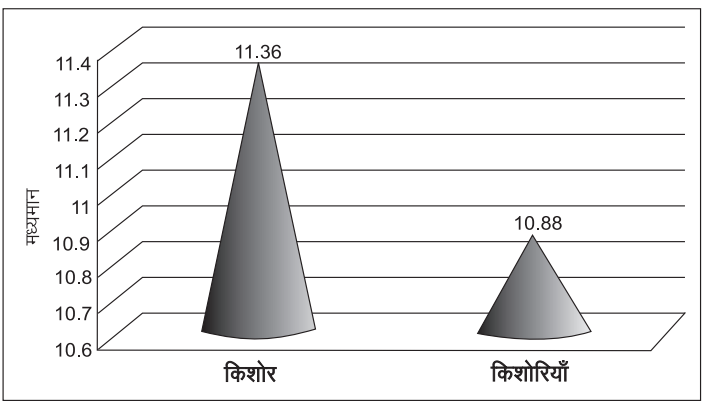

किशोर एंव किशोरियों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर प्रभाव को तालिका द्वारा अवलोकित करने पर ज्ञात होता है, कि किशोर 11.36 मध्यमान प्राप्त कर किशोरियों के प्राप्त मध्यमान 10.88 की तुलना में अधिक अनुवर्तितायुक्त व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। किशोरों ने 2.931 मानक विचलन प्राप्त कर यह स्पष्ट किया कि सामान्यत: सभी किशोरों ने अपने उत्तरों में समान अभिव्यक्ति को ही व्यक्त किया है एवं प्राप्ताकों में उच्चतम एवं निम्नतम सीमा का समावेश कम है। मध्यमान एंव मानक विचलन में प्राप्त अंतर की सार्थकता को ज्ञात करने के लिये प्राप्त टी-मान (1.598), 238 मुक्तांश पर ही तलिका में निर्धारित मान से कम होने के कारण .05 सार्थकता स्तर पर असार्थक प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप स्पष्ट होता है कि मध्यमानों के मध्य प्राप्त अन्तर मात्र संयोगवश है एवं सांख्यिकीय दृष्टिकोण से महत्वहीन हैं। अत: लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

उद्देश्य-3 : दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों की अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना

तालिका-5

अनुवर्तिता के स्तर	उच्च (11)	मध्यम (177)	निम्न (52)
आधुनिकीकरण के आयाम	सह संबंध	सह संबंध	सह संबंध
शिक्षा	-0.372	-0.145	-0.147
अभिभावक-किशोर संबंध	0.191	-0.02	-0.081
धर्म	0.192	0.006	-0.244
राजनीति	-0.339	-0.161	-0.092
स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर	-0.421	-0.027	-0.076
विवाह	-0.34	-0.225	0.138
सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र	-0.345	0.044	-0.028

दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों का अनुवर्तिता के स्तर के आधार पर आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध अवकलित किया गया। तालिका के गहन अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उच्च अनुवर्तिता प्राप्त किशोर राजनीति, स्त्रियों की स्थिति स्तर विवाह, सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र एवं शिक्षा में क्रमश: (-0.339, -0.421, -0.34, -0.345, -0.372) असार्थक निम्न ऋणात्मक सहसंबंध प्रदर्शित कर रहे हैं। जो उपरोक्त सभी क्षेत्रों में आधुनिक प्रवृत्ति का समर्थन नहीं कर रहे हैं। मध्यम अनुवर्तिता प्राप्त 177 किशोर विवाह,

राजनीति, शिक्षा में क्रमशः (–0.225, –0.161, –0.145) सार्थक अत्यन्त निम्न ऋणात्मक सहसंबंध प्रकट कर आधुनिक अभिवृत्ति का अंश मात्र विरोध कर रहे हैं। इसी प्रकार निम्न अनुवर्तित किशोरों ने भी सभी आयामों में अत्यन्त निम्न असार्थक ऋणात्मक सहसंबंध प्राप्त किया। परिणामतः कहना उचित होगा कि दयालबाग शिक्षण संस्थान में कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के किशोरों को सम्मलित किया गया था। यद्यपि संस्थान में उचित शैक्षिक वातावरण एवं परिवेश है परन्तु प्रत्येक संकाय एवं मुख्यतः कला संकाय की किशोरियों में निम्न सीमा में पुरातन विचारधारा का समावेश है। प्राप्त सभी सहसंबंध मान अत्यन्त निम्न होने के कारण उपेक्षणीय हैं अतः किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का उनकी सामाजिक अनुवर्तिता के स्तरों पर प्रभाव लगभग नगण्य है।

उद्देश्य–4 : डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के किशोरों की अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करना

तालिका–6

अनुवर्तिता के स्तर	उच्च (9)	मध्यम (182)	निम्न (49)
आधुनिकीकरण के आयाम	सह संबंध	सह संबंध	सह संबंध
शिक्षा	-0.697	0.087	0.204
अभिभावक–किशोर संबंध	-0.857	-0.219	-0.22
धर्म	-0.563	0.07	0.027
राजनीति	0.48	0.109	-0.116
स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर	-0.756	0.066	-0.032
विवाह	0.26	-0.09	0.108
सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र	-0.822	-0.151	0.323

सामाजिक अनुवर्तिता के तीनों स्तर का आधुनिकीकरण के विविध आयामों के सन्दर्भ में प्रभाव का अध्ययन डा. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के परिपेक्ष्य में किया गया। परिणामों से दृष्टिगत हुआ कि उच्च अनुवर्तिता प्राप्त किशोरों ने शिक्षा, स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर तथा सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः (–0.697, –0.756, –0.822) सार्थक उच्च ऋणात्मक सहसंबंध प्राप्त किया जो यह प्रदर्शित करता है कि उच्च स्तरीय अनुवर्तिता होने पर भी उपरोक्त आयामों में आधुनिकीकरण की अभिवृत्ति का समावेश कम है। तालिका से स्पष्ट होता हैं कि उच्च अनुवर्तिताप्राप्त किशोर राजनीति के क्षेत्र में मध्यम आधुनिकता को प्रदर्शित कर रहे है, इनके मध्य प्राप्त सहसंबंध .48 है जो मध्यम

धनात्मक स्तर का है परन्तु असार्थक होने के कारण यह मान अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार मध्यम एवं निम्न अनुवर्तिता के स्तर में क्रमशः अभिभावक किशोर संबंध, सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः (–0.151, –0.323) अत्यन्त निम्न ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध गणित हुआ जो उपेक्षणीय है। तालिका में प्राप्त अन्य सभी मान असार्थक एवं अत्यन्त निम्न सहसंबंध को प्रदर्शित करने के कारण महत्ता को प्रदर्शित नहीं करते हैं। निष्कर्षतः ज्ञात होता है कि अधुनिकीकरण के विविध आयामों में प्रदर्शित अभिवृत्ति मात्र उच्च स्तरीय अनुवर्तिता को ही प्रभावित करती है।

उद्देश्य–5 : किशोंरों की अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सह–संबंध का ज्ञात करना

तालिका–7

अनुवर्तिता के स्तर	उच्च (5)	मध्यम (157)	निम्न (28)
आधुनिकीकरण के आयाम	सह संबंध	सह संबंध	सह संबंध
शिक्षा	-0.277	-0.012	-0.063
अभिभावक–किशोर संबंध	0.58	-0.076	-0.25
धर्म	0.315	0.11	-0.126
राजनीति	0.69	-0.038	0.057
स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर	-0.331	0.06	-0.01
विवाह	-0.164	0.212	-0.118
सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र	-0.198	-0.181	-0.059

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उच्च अनुवर्तिताप्राप्त किशोरों ने राजनीति, अभिभावक किशोर संबंध, धर्म के क्षेत्र में क्रमशः (0.69, 0.58, 0.315) असार्थक परन्तु मध्यम धनात्मक सहसंबंध प्राप्त किया यह मान सांख्यिकीय दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। मध्यम स्तरीय अनुवर्तिता में किशोरों ने वैवाहिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः (0.212, –0.181) अत्यन्त निम्न धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध प्राप्त किया जो सार्थक है परन्तु निम्न होने के कारण उपेक्षणीय है। तालिका में प्रदर्शित अन्य सभी मान असार्थक एवं नगण्य हैं अर्थात स्पष्ट है कि सामाजिक अनुवर्तिता के विभिन्न स्तरों का आधुनिकीकरण के विविध आयामों पर कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

उद्देश्य-6 : किशोंरियों की अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सह-संबंध ज्ञात करना

तालिका-8

अनुवर्तिता के स्तर	उच्च (15)	मध्यम (202)	निम्न (73)
आधुनिकीकरण के आयाम	सह संबंध	सह संबंध	सह संबंध
शिक्षा	-0.205	-0.05	0.113
अभिभावक-किशोर संबंध	-0.446	-0.165	-0.083
धर्म	-0.273	-0.036	-0.123
राजनीति	0.07	-0.025	-0.163
स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर	-0.713	-0.038	-0.087
विवाह	-0.008	-0.089	0.243
सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र	-0.615	0.037	-0.252

किशोरियों हेतु सामाजिक अनुवर्तिता के विविध स्तरों एवं आधुनिकीकरण के आयामों के मध्य संबंध को तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च अनुवर्तिता की अभिव्यक्ति वाली किशोरियों ने स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर, सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः (-0.713, -0.615) उच्च ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध प्रस्तुत किया, जो प्रदर्शित करता है कि इन दोनों आयामों में आधुनिक प्रवृत्ति का समावेश निम्न है। जो यह प्रदर्शित करता है कि उच्च अनुवर्तिता का पालन करने के उपरान्त भी वे उपरोक्त आयामों में परम्परागत विचार प्रदर्शित करती हैं। मध्यम अनुवर्तिता एवं अभिभावक किशोर संबंधों में (-0.165) अत्यन्त निम्न ऋणात्मक सार्थक संबंध प्राप्त हुआ एवं निम्न अनुवर्तिता की विचारधारा वाली किशोरियों ने विवाह एवं सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः (0.243, -0.252) निम्न धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंधों को व्यक्त किया। ये मान अत्यन्त निम्न होने के कारण उपेक्षणीय हैं।

शोध की उपलब्धियाँ

वर्तमान शोध की उपलब्धियां उनके उद्देश्यों के अनुसार क्रम से वर्णन की गयी है-

उद्देश्य-1 : किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन

किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का अध्ययन दयालबाग शिक्षण संस्थान एवं डॉ.

भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित हुआ कि दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों में आधुनिकीकरण का समावेश तुलनात्मक रूप से अधिक है क्योंकि अवकलित टी–मान सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थकता को प्रस्तुत कर रहा है इसका प्रमुख कारण स्पष्ट है कि यहाँ अध्ययन हेतु चयन की प्रक्रिया से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण ज्ञानार्जन, समय–समय पर उचित मूल्यांकन एवं अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं में प्रतिस्पर्धा आदि इन सभी चरणों के अन्तर्गत किशोरों के मन में सकारात्मक अवधारणा, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिखर पर पहुँचने की कामना आदि गुणों का विकास होता है। किशोरों ने नवीन परिवर्तनों को विशाल हृदय से ग्रहण करने की अभिवृत्ति को अपनाया। पुरातन भारतीय अवधारणा एवं मान्यताओं के विखण्डन से किशोरों के मन मस्तिष्क में भी नये मानकों की स्थापित करने की प्रवृत्ति पायी गयी। किशोरों ने स्पष्ट किया कि वे स्वयं के अनुसार समाज को निर्मित करना चाहते हैं, परन्तु अपने प्रत्येक कार्यक्षेत्र में गृह, समाज के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि के संबल को जीवन्त रखने का प्रयास करते हैं, सभी किशोरों का सम्मिलित मत है कि प्राचीन कुरीतियाँ, व्यर्थ की अवधारणा, मानवीय संवेदना को क्षति पहुँचाने वाले कारणों की समाप्ति आवश्यक है। तभी भारतीय को उच्चता की प्राप्ति होगी। एवं किशोरों के विकास से राष्ट्र की उन्नति सम्भव होगी। **ए. सिंह (2004)** एवं **सुधीर कुमार (2001)** ने स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर आधुनिकीकरण का प्रभाव तथा प्रत्येक क्षण ग्रामीणों की आधुनिकता की ओर परिवर्तित होती अभिवृत्ति में स्पष्ट किया है। वर्तमान समय में आधुनिकता का प्रसार गावों तक हो गया है। जिस कारण प्रत्येक किशोर स्वयं को परिवर्तन करना एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से सफलता को प्राप्त करना आवश्यक मानता है। वर्तमान शोध में भी इसी प्रकार के परिणामों का प्रादुर्भाव स्पष्ट हुआ है। अत: पूर्व कल्पित परिकल्पना में डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। अत: परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

1.1 लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

लैंगिक भेद के आधार पर किशोरियों ने सार्थक रूप से आधुनिकीकरण प्रस्तुत किया। प्रसन्नता का विषय है कि हमारे समाज विशेषकर किशोरियों में जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ हैं, वह अपने व्यक्तिव निर्माण के किसी भी सुअवसर से वंचित होना नहीं चाहती है। शिक्षा के क्षेत्र में किशोरियां गृह का सहयोग प्राप्त होते ही स्वयं को विभिन्न पदों पर आसीन करने का कठिन परिश्रम कर रही हैं। अब किशोरियां मात्र धर्म व संस्कृति के निर्वाह हेतु ही प्रयासरत नहीं है वे किशोरों के साथ प्रत्येक समय समान रूप से अपना

स्थान सुदृढ़ करना चाहती हैं। कुछ क्षेत्र जो मात्र किशोरों के आधीन थे, जैसे–राजनीति, व्यवसाय आदि में किशोरियों का वर्चस्व हो रहा है। किशोरियां का सामान्य मत था कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण स्वयं के अस्तित्व निर्माण एवं पहचान हेतु जागरूकता के साथ जीवनयापन आवश्यक है। किशोरों ने भी आधुनिक प्रवृत्ति को प्रकट किया परन्तु सम्भव है कि पुरुषप्रधान मानसिकता होने के कारण वे कुछ क्षेत्रों में किशोरियों को अधिक विकसित नहीं होने देना चाहते हैं। प्राप्त परिणाम का समर्थन करते हुये, **सांथा के.सी. (2009)** ने भी अध्ययन में बताया कि शैक्षिक क्षेत्र में स्नातक महिलायें शिक्षा, राजनीति, स्त्रियों की स्थिति एवं सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिक सकारात्मक एवं प्रभावी विचार रखती है। पूर्व निर्धारित परिकल्पना में लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की आधुनिकीकरण अभिवृत्ति में कोई सार्थक संबंध नहीं पाया जाता है। अत: परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

उद्देश्य–2 : डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय एवं दयालबाग शिक्षण संस्थान की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन

विश्वविद्यालय स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय के किशोरों ने अधिक सामाजिक अनुवर्तिता को प्रदर्शित किया है। विश्वविद्यालयों में आँकड़ों के संग्रहीकरण के समय एकत्रित सामान्य सूचनाओं के आधार पर अनेक तथ्य संज्ञान में उपस्थित हुये। किशोर अपना अधिकांश समय नवीन आविष्कार, प्रचलन में उपस्थिति नये वस्त्र, मोबाइल फोन, धारण करने योग्य विभिन्न सज्जा की वस्तुऐं एवं फैशन के अनुसार प्रत्येक ज्ञान को परस्पर एक दूसरे को प्रदान करते हैं। किशोरियां टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले विभिन्न धारावाहिकों की विषयवस्तु पर चर्चा करना अधिक पसन्द करती हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक किशोर स्वयं को उसकी असार्थक, सामाजिक, वैचारिक सुविधानुसार किसी न किसी समूह में संबंध कर लेता है एवं समूह के मानकों के अनुसार विचारों को व्यक्त करता है। यद्यपि प्राप्त मान टी–मान के असार्थक होने के कारण सांख्यिकीय दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, परन्तु उपेक्षणीय भी नहीं है। प्रस्तुत शोध को अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुये **शर्मा टी.एस. (2009)** ने अपने अध्ययन भारतीय युवाओं द्वारा ब्रांडेड वस्त्रों के चयन की अनुवर्तिता पर आधारित अध्ययन में विचार स्पष्ट किये थे अत: यह शोध वर्तमान अध्ययन को समर्थन प्रदान कर रहा है।

2.1 लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों की सामाजिक अनुवर्तिता का तुलनात्मक अध्ययन

किशोर एवं किशोरियों के मध्य सामाजिक अनुवर्तिता के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि किशोर अनुवर्तिता संबंधी व्यवहार को अधिक प्रकट करते हैं परन्तु गणित टी–मान

तालिका में निर्धारित टी-मान से कम होने के कारण असार्थकता को प्रदर्शित कर रहा है। हमारे समाज में यह सर्वविदित है कि किशोरों को उपलब्धियों के अनेक अवसर प्रदत्त हैं। परिवार के सदस्य प्रारम्भ से ही किशोरों के मन मस्तिष्क में इस तथ्य का प्रादुर्भाव करते हैं कि उनको अपने जीवन में सफलता प्राप्त करना, व्यवसायिक चयन कर जीविकोपार्जन हेतु उचित मार्ग की आवश्यकता होती है एवं जीवन में सफल होने के लिये प्रत्येक किशोर को किसी न किसी समूह, विचारधारा को स्वीकार कर अनुवर्तिता की अभिव्यक्ति करना स्वाभाविक है। किशोरियां अधिकांश समय अपने शिक्षण संस्थान या गृह में व्यतीत करती हैं। इस समय में वे अपने विचारों का आदान-प्रदान विभिन्न मतों पर करती हैं एवं अपने समूहानुसार व्यवहार करती हैं। किशोरों में अनुवर्तिता को स्वीकार करने के विभिन्न समूह यथा शैक्षिक, राजनैतिक, शिक्षा को महत्व न प्रदान करने वाला समूह, कार्य क्षेत्र में सक्रिय समूह आदि पाये जाते हैं, इसी कारण किशोरों का अनुवर्तिता स्तर भी अधिक होता है। ऐसा ही मत **एम.के. चौधरी (2008)** ने अपने अध्ययन किशोरों की उपलब्धि, प्रेरणा, उत्तेजना, लैंगिक, सामाजिक स्तर एवं व्यवसायिक महत्वाकांक्षा के मध्य सहसंबंध में प्रस्तुत किया एवं सार्वजनिक किया कि किशोरों को समाज में स्व-आस्तित्व निर्धारण हेतु अधिक दबाव एवं तनाव का सामना करना पड़ता है। यह परिणाम वर्तमान समय में पूर्णत: उचित प्राप्त हुये हैं एवं शोध निष्कर्ष का समर्थन कर रहे हैं। पूर्व निर्धारित परिकल्पना में लैंगिक भेद के आधार पर किशोरों का आधुनिकीकरण के प्रति अभिवृत्ति का सामाजिक अनुवर्तिता पर प्रभाव के सन्दर्भ में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। अत: परिकल्पना को स्वीकृति प्रदान की जाती है।

उद्देश्य-3 : दयालबाग शिक्षण संस्थान के किशोरों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

दयालबाग शिक्षण संस्थान में 177 किशोरों ने अपनी मध्यम अनुवर्तिता की मानसिकता को स्पष्ट किया। यह दृष्टिकोण शैक्षिक, राजनैतिक एवं वैवाहिक स्तर पर निम्न ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध को प्रकट कर रहा है, क्योंकि प्रत्येक स्तर पर प्राप्त टी-मान तालिका में निर्धारित मान टी-मान से अधिक है। मध्यम अनुवर्तिता प्रदर्शित करने वाले किशोर सामान्यत: औसत दृष्टिकोण अपनाते हैं। दयालबाग शिक्षण संस्थान में आधुनिकता का सहज समावेश है परन्तु अध्ययन में विभिन्न संकायों के किशोरों को सम्मलित किया गया है। विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय में तो किशोरों ने आधुनिकता को अपने उत्तरों में स्पष्ट किया है परन्तु कला संकाय की कुछ किशोरियां वर्तमान समय में भी अपनी योग्यता को प्राचीन विषयों तक ही सीमित रखने में संतुष्ट थी। न्यूनतम स्तर की शैक्षिक उपलब्धि ही उनका जीवन लक्ष्य ज्ञात हुआ। इसी कारण किशोर एवं किशोरियां अपने विवाह के

परिप्रेक्ष्य में भी अपने ही पंथ में विवाह करना उत्तम मानते हैं। शैक्षिक स्तर की निम्नता के कारण यह किशोर राजनीति के क्षेत्र में भी अग्रसरित नहीं हो सकते हैं। दयालबाग विश्वविद्यालय में शैक्षिक वातावरण उच्चकोटि के कारण राजनैतिक वातावरण को अपेक्षाकृत कम महत्ता प्राप्त है इसी कारण किशोर अपने मन में राजनीति में आने की, कार्य करने की कामना व्यक्त तो करते है परन्तु पूर्णत: आधुनिक दृष्टिकोण नहीं अपना सकते हैं।

उद्देश्य-4 : डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

इस विश्वविद्यालय में उच्च, मध्यम एवं निम्न तीनों स्तरों की अनुवर्तिता प्रदर्शित करने वाले किशोरों ने सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में निम्न ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध प्रस्तुत किया है। इन सभी क्षेत्रों में परिणाम से प्राप्त टी-मान का मान निश्चित मुक्तांश पर मानकीकृत मान से अधिक है। इसका कारण स्पष्ट है कि विभिन्न पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं ग्रामीण तथा शहरी भिन्नता, तत्पश्चात भी किशोर इस आधुनिक काल में भी परम्परा, रूढ़िवादिता, प्राचीन मान्यताओं की जड़ों से जुड़े हुये हैं। सांस्कृतिक धरोहरों की रक्षा करने में वे अग्रसरित हो रहे हैं जो देश के विकास में सहायक है परन्तु सामाजिक नियमों के पुरातन चक्रव्यूह को वह अभी नहीं तोड़ सके हैं। यद्यपि ग्रामीण एवं निम्न मानसिकता वाले किशोर स्वयं को आधुनिक मानकों के अन्तर्गत सम्मलित करने का निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं। शिक्षा के द्वारा किशोरों के मानसिक स्तर को एक समान रूप से विकसित कर सकते हैं परन्तु उच्च अनुवर्तिता प्राप्त किशोरों ने शिक्षा एवं स्त्रियों की स्थिति व स्तर में निम्न आधुनिक अभिवृत्ति को प्रदर्शित किया है। स्पष्ट है कि दोनों आयाम एक दूसरे के पूरक हैं। हमारे समाज में स्त्री शिक्षा, उत्थान, समाज में पुरुषों के समकक्ष स्थान अभी भी व्यवहारिक रूप में उतना विकसित नहीं कि स्त्री स्वयं की शिक्षा एवं स्थिति में संतुष्ट हो।

उद्देश्य-5 : किशोरों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों में सहसंबंध का अध्ययन

अनुवर्तिता के तीनों स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों का किशोरों के परिप्रेक्ष्य में परस्पर प्रभाव ज्ञात हुआ कि मध्यम स्तरीय अनुवर्तिता प्राप्त किशोरों ने विवाह में निम्न घनात्मक सार्थक सहसंबंध एवं सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में निम्न ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध प्रस्तुत किया। उपरोक्त क्षेत्रों के टी-मान तालिका में निर्धारित टी-मान से अधिक अवकलित हुये हैं। हमारे समाज के लिये यह परिवर्तन की विचारधारा का प्रादुर्भाव है क्योंकि अधिकांशत: समाज मध्यम स्तरीय विचारधारा वाले किशोरों का

आधिक्य है। इतने विस्तृत समूह में भी यदि कुछ किशोर विवाह के क्षेत्र में प्रेम विवाह, समान जाति न होकर समान स्तरीय विवाह, आडम्बरों व दिखावे का विरोध कर रहे हैं तो निश्चित ही आगामी समय में अधिक परिवर्तन परिलक्षित होगा जो कुछ सीमा तक लाभदायक सिद्ध होगा। किशोरों का इतना विस्तृत समूह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि यद्यपि वह विवाह में आधुनिकीकरण को प्रदर्शित कर रहे हैं परन्तु वे ये भी मानते है कि संस्कृति व संस्कार को जीवन में बनाये रखना अति आवश्यक है। किशोरों का यही मत भारतीय सभ्यता को परिलक्षित करता है। **रिचर्ड पॉल (2006)** के अनुसार किशोरावस्था में विपरीत लैंगिक आकर्षण अत्यधिक होता है जो समूह में अनुवर्तिता संबंधी व्यवहार को प्रेरित करता है तथा व्यक्तित्व विकास में योगदान प्रदान करता है एवं विवाह संबंध बनाता है परन्तु वर्तमान शोध में पाया गया कि भारतीयता के संबंध में वैवाहिक स्थायित्व हेतु किशोर पारम्परिकता का ही निर्वाह कर रहे हैं इसी कारण दोनों शोध कार्यों में पृथक-पृथक पृष्ठभूमि होने के कारण वैचारिक एवं परिणामगत् असमानता परिलक्षित हुई है।

उद्देश्य-6 : किशोरियों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

किशोरियों हेतु अनुवर्तिता के स्तर एवं आधुनिकीकरण के विविध आयामों के मध्य सहसंबंध से ज्ञात हुआ कि उच्च अनुवर्तिता प्राप्त किशोरियों ने स्त्रियों की स्थिति एवं स्तर तथा सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में उच्च ऋणात्मक सार्थक सहसंबंध प्राप्त किया अर्थात सम्पूर्ण किशोरियों में मात्र कुछ किशोरियों ने ही आधुनिकीकरण के प्रत्यय को उपरोक्त आयामों में निम्नता प्राप्त की। उनका मत है कि स्त्रियों की स्थिति एवं स्थान, घर, धार्मिक मान्यता और संस्कृति की रक्षा करना मात्र ही उद्देश्य हैं इसका कारण स्पष्ट है कि वे किशोरियाँ जिनके गृह का वातावरण, अशिक्षित, ग्रामीण पृष्ठभूमि, अधिक सदस्यों की संख्या, मात्र साक्षरता के लिये ही शिक्षा की अनिवार्यता आदि है, वे ही इस प्रकार के परिणाम परिलक्षित करती हैं। किशोरियों के एक विस्तृत समूह ने अभिभावक किशोर संबंधों में धनात्मक निम्न सार्थक संबंध प्रस्तुत किया है जो स्पष्ट करता है कि अधिकांश किशोरियाँ अपने गृह परिवार एवं अभिभावकों की आज्ञा का सम्मान करना उचित मानती है। वे स्वयं के अतिरिक्त अपने माता-पिता की सलाह को स्वीकृत करती है एवं कार्य करती है। निम्न स्तरीय अनुवर्तिता प्राप्त किशोरियों ने विवाह एवं सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रमशः धनात्मक, ऋणात्मक सहसंबंध प्रदर्शित किया। परन्तु ये सभी मान अत्यन्त कम होने के कारण उपेक्षणीय हैं।

शैक्षिक उपयोगिता

शैक्षिक शोध शिक्षण प्रक्रिया को ज्ञात करने के लिये उत्तम साधन है। किसी भी शोध की उपयोग्ति सम्भव नहीं जब उसके परिणामों को व्यवहारिक रूप से लागू न किया जा सके। प्रस्तुत शोध की उपलब्धियों के आधार पर शोध की शैक्षिक उपयोगिता इस प्रकार से निर्धारित की गयी है–

अभिभावक वर्ग हेतु : अभिभावकों के लिये यह ज्ञात करना अत्यावश्यक है कि उनके किशोरों की अभिवृत्ति में किस तत्व की प्रधानता है। वे विचारों में किस तथ्य को प्रधानता प्रदान करते हैं एवं उनका गृह, समाज, शिक्षा, भावनात्मक, स्वास्थ्य के प्रति समायोजन किस स्तर का है? किशोरावस्था किशोरों के विकास की मुख्य अवस्था है अत: उनके व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास हेतु यह ज्ञात करना अत्यावश्यक है कि उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय, जिससे वह अपने मनोभावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकें तथा आस–पास के वातावरण से लाभ प्राप्त कर सकें। इस शोध के माध्यम से उपरोक्त सभी तथ्यों को ज्ञात करने का प्रयास सफल होगा।

शिक्षक वर्ग हेतु : शिक्षक ही किशोर के विकास का आधार है ये शोध शिक्षक को इस चिंतन के लिये प्रेरित करता है कि क्या वर्तमान समय में किशोर सही मार्ग में प्रशस्त है? पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण से परिवर्तित होती किशोर अभिवृत्ति एवं समायोजन को उचित रूप से गति प्रदान करने का कार्य शिक्षक इस शोध के परिणामों से प्रेरित होकर सुविधाजनक मार्ग से कर सकता है। शिक्षक किशोरों की ज्ञान पिपासा को भी शान्त करने में अपना योगदान प्रदान कर सकता है।

शिक्षाशास्त्री, प्रशासक, समाज विचारक वर्ग हेतु : वर्तमान शैक्षिक वातारण में विश्वविद्यालयों में अधिकांशत: हिंसा या अस्वस्थकर वातावरण का समावेश रहता है। कुछ किशोरों के उग्र व अनुचित राजनैतिक विचार एवं व्यवहार से सम्पूर्ण शैक्षिक वातावरण प्रभावित होता है। इस शोध के परिणामों के माध्यम से विश्वविद्यालय, महाविद्यालय के प्रबन्धक, सुविधा प्राप्त होगी कि वे किशोरों के मनोभावों उनकी आवश्यकताओं एवं उपलब्धियों से परिचित होकर अपने संस्थान में उचित नियमों एवं अवसरों का निर्माण कर सकेंगे।

निर्देशनकर्ता एवं परामर्शदाता हेतु : प्रस्तुत शोध के परिणाम परामर्श हेतु अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। यदि किसी किशोर में व्यवहारगत अभिवृत्ति में परिवर्तन वैचारिक द्वन्द्व, समायोजन का अभाव दृष्टिगत होगा तो निश्चय ही प्राप्त परिणामों के आधार पर परामर्शदाता अपने माध्यम से उक्त किशोर की समस्या का समाधान कर सकेगा एवं उसके जीवन को उपयोगी बना सकेगा।

सरकार हेतु : किशोर ही देश का भविष्य होते हैं एवं यह सरकार का नैतिक दायित्व है कि वह इस प्रकार की नीतियों का निर्धारण कर सके जिससे सभी किशोरों को लाभ हो एवं उनका बहुमुखी विकास हो। सरकार को ऐसे अपनी प्रणाली को कार्यान्वित करना चाहिये कि किशोरों को व्यवसाय के अवसर, विचारों में उत्थान एवं समायोजन में उचित मार्गदर्शन प्राप्त हो। शोध के परिणाम नीति निर्धारण में सरकार की सहायता कर सकते है।

संदर्भ

अरनॉल्ड, के.डी. (1994) *अरली एडल्ट्स करियरर्स ऑफ एकेडिमिकली टेलेन्टेड मेल एण्ड फीमेल स्टूडेन्ट्स* जॉरवुड एन.जे.: एबलेक्स, (24–51)

आजिज, क़ुरैशी (2001) *एज, जेन्डर एण्ड रिलीजियम डिफरेन्सेस इन मोटीवेशनल पैटर्न एमंड एडोलेसेन्ट्स जनरल ऑफ द इंडियन एकेडमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी,* संस्करण 17 (1–2), (21–24)

एगली, ए.एच. चखाला, सी. (1986) *सेक्ट डिफरेंस कन्फरमिटी: स्टेट्स एण्ड जेंडर रोल इंटरप्रिटेशन्स साइकोलॉजी ऑफ विमेन* क्वाटरली, (10), (203–220)

एकेडेमिक अमेरिकन इन्साक्लोपीडिया (1996) भाग–18, *लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कैटालॉगिंग इन पब्लिक्केशन डाटा* (9)

ऐलेक, वॉलटुट (2000) *पैराडाइग्रास ऑफ सोशल चेन्ज : मार्डनाइजेशन, डबलपमेन्ट, ट्रांसफॉरमेशन, इव्येव्यूशन* मॉर्टिन (90–135)

डार्विन, एन. थॉमस. (1994) *मार्डनाइजेशन थ्योरी: ए क्रॉस कल्चर स्टडी ऑफ एडोलेसेन्ट कन्फरमिटी टू सिगनीफिकेन्ट अदर्स इन चाइना,* भाग 24, (290–394)

गौरी, एम.इनगेरसॉल (1989) *किशोर अभिवृत्ति,* 2 संस्करण, प्रिन्टेस हॉल इन. (120–190)

गसफील्ड, जोसफ (2007) द *स्टडी ऑफ सोशल मूवमेन्ट्स इन्टरनेशनल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज* (14)

झा, अखिलेश्वर (1978) *मार्डनाइजेशन एण्ड हिन्दू सोशल कल्चर* दिल्ली, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन

स्टार्क, आर. (1984) *रिलीजन एण्ड कन्फरमिटी, रिफाइनरग द सोशलॉजी ऑफ रिलीजन* सोशियोलॉजिकल एनालाइसिस, (45, 273–282)

असह योगेन्द्र (1989) *भारत में आधुनिकीकरण,* तृतीय संस्करण (243–270)

असह, एन.एन. (1984) द *इफैक्ट ऑफ सोशियोइकोनॉमि स्टेट्स ऑन सोशल कन्फरमिटी पर्सपेक्टिव इन सॉइकोलॉजिकल रिचर्स* (7, 36–37)

सिंह, आर.एस. त्रिपाठी (1979) *मैनुअल फॉर मार्डनाइजेशनस्केल* आगरा, नेशनल साइकोलिजिकल कॉरपोरेशन

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

स्त्रियाँ, विकलांगता और उच्च शिक्षा

मधु कुशवाहा* और **महिमा यादव****

सारांश

शिक्षा, सामाजिक व्यवस्था का अंग है इसीलिए लैंगिक असमानता की जो संरचनाएँ भारतीय समाज में मौजूद हैं उनका दखल शैक्षिक परिदृश्य में भी नामांकन, स्कूल छोड़ने व टिकने की दर, शैक्षिक गुणवत्ता, विषयों के चयन व व्यावसायिक प्रत्याशाओं से लेकर शैक्षिक जीवन के तमाम पहलुओं में दिखता है। स्त्री की जाति, आर्थिक स्थिति, धर्म, नगरीय-ग्रामीण पृष्ठभूमि तथा शारीरिक व मानसिक स्थिति की भी उसके सामाजिक व शैक्षिक जीवन की संभावनाओं को निर्धारित करने में महत्पूर्ण भूमिका होती है। स्त्री होने व शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण होने की संयुक्त स्थिति दोहरे विभेदीकरण का शिकार बनाती हैं और विकलांग लड़कियों की शैक्षिक संभावनाओं को व्यापक रूप से सीमित करती हैं। इस पत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सत्र 2012-13 में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के पंजीकरण की जेंडर ऑडिट कर विकलांग लड़कियों की शैक्षिक स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है तथा उनकी शैक्षिक पहुँच को सीमित करने वाली सामाजिक, आर्थिक व संरचनात्मक बाधाओं पर प्रकाश डाला गया है ताकि 'स्त्री' और 'विकलाँगता' के अंतर्संबंधों से उपजी दोहरी हाशियाकृत स्थिति पर ध्यान दिया जाए और यह समझा जा सके कि विकलाँगता की कोई भी बहस जेंडर-निरपेक्ष नहीं होनी चाहिए।

प्रस्तावना

सामाजिक न्याय की माँग एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रतिभा के विकास व लक्ष्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हों। सामाजिक न्याय मानवतावाद व लोकतांत्रीकरण की प्रेरणा प्राप्त किसी भी समाज का अपरिहार्य लक्ष्य

*एसोसिएट प्रोफ़ेसर, शिक्षा संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
**एम. एड., शिक्षा संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

होगा। 'व्यक्ति की गरिमा' में आस्था रखने वाला तथा 'सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय' को सुनिश्चित करने का आदर्श संजोने वाला भारतीय संविधान भी सामाजिक न्याय की आवश्यकता के प्रति सचेत रहा, इसलिए अनुच्छेद 45 के तहत यह राज्य को कार्यभार सौंपता है कि राज्य 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क व अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करेगा, क्योंकि शिक्षा मानवीय विकास की अपरिहार्य आवश्यकता होने के साथ-साथ सामाजिक गतिशीलता की भी उत्प्रेरक है। नीति निर्देशक तत्वों की व्यवस्था के अंतर्गत होने के कारण अनुच्छेद 45 वर्षों तक सरकारी दृष्टि से उपेक्षित रहा परन्तु 86वें संविधान संशोधन द्वारा आज शिक्षा को न केवल मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है बल्कि इसे जीवन के अधिकार का विस्तार माना गया है क्योंकि शिक्षा ससम्मान जीवन जीने की अनिवार्यता है। शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किए जाने का सर्वाधिक महत्व गरीबों, महिलाओं, दलितों, आदिवासियों, ग्रामीणों तथा शारीरिक व मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण व्यक्तियों के लिए है जिनकी संख्या स्कूलीतंत्र से बाहर रह जाने, निकल जाने व कर दिए जाने वाले बच्चों के समूह में सर्वाधिक है। शिक्षा संसाधन है और किसी भी व्यक्ति अथवा समूह की संसाधनों तक पहुँच उसके पास विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व विचारधारात्मक शक्ति पर निर्भर करती है। सामाजिक संरचना में व्याप्त लैंगिक, आर्थिक, जातिगत, धार्मिक, नस्लीय व अन्य अन्यायपूर्ण असमनाताएँ विभिन्न समूहों की शैक्षिक पहुँच को असमान बनाती हैं तथा उनकी शैक्षिक स्थिति निर्धारित करने में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। कौन स्कूलों में पहुँचता है और कैसे स्कूलों में पहुँचता है, कब तक स्कूलों में टिका रहता है, स्कूलों में क्या पढ़ाया जाता है, कैसे पढ़ाया जाता है, कौन से बच्चे स्कूलों में उपलब्धि अर्जित करते हैं और किसे असफल करार दिया जाता है, किसकी शिक्षा व्यावसायिक सफलता में परिवर्तित होती है और किसकी नहीं, ये सभी प्रश्न अनिवार्य रूप से राजनीतिक हैं जो शिक्षा और सत्ता के संबंधों की परतें खोलते हैं। सामाजिक स्तरीकरण में निम्न सत्ता वाले समूहों में से एक समूह शारीरिक व मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण व्यक्तियों का है जिनकी शैक्षिक स्थिति भी हाशियाकृत है। 86वें संविधान संशोधन द्वारा अन्त:स्थापित अनुच्छेद 21(क) जो यह उपबंध करता है कि 'राज्य छ: से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा, उस प्रकार की रीति से जैसा राज्य विधि अनुसार अवधारित कर सकेगा, की व्यवस्था करेगा विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की दृष्टि से विशेष प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त 86वें संविधान संशोधन द्वारा ही संशोधित अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य, सभी बालकों को 6 वर्ष तक की आयु पूरी करने तक, प्रारंभिक शिशु सेवा और शिक्षा प्रदान करने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा व अनुच्छेद 51(क) में नया खंड (V)

अंत:स्थापित करते हुये कहा कि जो माता-पिता या संरक्षक हैं, 6 से 14 वर्ष के मध्य आयु के अपने, यथास्थिति, अपने बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा का अवसर प्रदान करें। ये संशोधित व्यवस्थाएँ व्यक्तिगत अधिकारों का विस्तार तो हैं ही, साथ ही ये राज्य व नागरिकों के कर्तव्यों का भी विस्तार हैं तथा विकलांग व्यक्तियों के लिए विशेष हितकारिणी हैं।

भारत ने विकलांगताग्रसित व्यक्तियों के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र के समझौते (United Nation*s Convention on rights of person with disabilities@UNCRPD) की पुष्टि की है तथा सभी विकलांगताग्रसित व्यक्तियों के मानवीय अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं को विकलांगता के आधार पर बिना किसी प्रकार के भेदभाव के प्राप्त करना सुनिश्चित एवं उन्नत करने का उत्तरदायित्व स्वीकारा है।

भारत ने एशिया प्रशान्त क्षेत्र में विकलांगताग्रसित व्यक्तियों की समानता तथा सम्पूर्ण सहभागिता के एक हस्ताक्षरकर्ता के रूप में अपनी जिम्मेदारियों की पूर्ति हेतु विकलांग व्यक्ति (समान अधिकार, अधिकारों का संरक्षण तथा सम्पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995 पारित किया। इस अधिनियम में विकलांग व्यक्तियों को कई आधारभूत अधिकार दिए गए हैं जिनमें शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अधिकार इस प्रकार हैं-

- प्रत्येक विकलांग बच्चे को 18 वर्ष की आयु तक उपयुक्त वातावरण में नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार हैं। सरकार को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेष स्कूल स्थापित करने चाहिए, सामान्य स्कूलों में विकलांग छात्रों के एकीकरण को बढ़ावा देना चाहिए और विकलांग बच्चों के व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए अवसर मुहैया कराने चाहिए।
- 5वीं कक्षा तक पढ़ाई कर चुके विकलांग बच्चे मुक्त स्कूल या मुक्त विश्वविद्यालयों के माध्यम से अंशकालिक छात्रों के रूप में अपनी शिक्षा जारी रख सकते हैं और सरकार से विशेष पुस्तकें और उपकरणों को नि:शुल्क प्राप्त करने का उन्हें अधिकार है।
- सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह नए सहायक उपकरणों, शिक्षण सहायक साधनों और विशेष शिक्षण सामग्री का विकास करे ताकि विकलांग बच्चों को शिक्षा में समान अवसर प्राप्त हों। विकलांग बच्चों को पढ़ाने के लिए सरकार को शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने हैं, विस्तृत शिक्षा संबंधी योजनाएं बनानी हैं, विकलांग बच्चों को स्कूल जाने-आने के लिए परिवहन सुविधाएं देनी हैं, उन्हें पुस्तकें, वर्दी और अन्य सामग्री, छात्रवृत्तियां, पाठ्यक्रम और नेत्रहीन छात्रों को लिपिक की सुविधाएं देना है।

- सभी सरकारी शैक्षिक संस्थान और सहायता प्राप्त संस्थान 3% सीटों को विकलांगजनों के लिए आरक्षित रखेंगे। रिक्तियों को गरीबी उन्मूलन योजनाओं में आरक्षित रखना है। नियोक्ताओं को प्रोत्साहन भी देना है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके द्वारा लगाए गए कुल कर्मचारियों में से 5% व्यक्ति विकलांग हों।
- दृष्टिहीनता, श्रवण विकलांग और प्रमस्तिष्क अंगघात से ग्रस्त विकलांगजनों की प्रत्येक श्रेणी के लिए 1% पदों का आरक्षण होगा। इसके लिए प्रत्येक तीन वर्षों में सरकार द्वारा पदों की पहचान की जाएगी। भरी न गई रिक्तियों को अगले वर्ष के लिए ले जाया जा सकता है। (विकलांग व्यक्ति (समान अधिकार, अधिकारों का संरक्षण तथा सम्पूर्ण सहभागिता) अधिनियम, 1995)।

विकलांग अधिकारों की इस क़ानूनी व्यवस्था के बावजूद अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक व संरचनात्मक बाधाएँ विकलांग समूह की शैक्षिक उपागम्यता को बाधित करते हैं। इस सन्दर्भ में स्त्री व विकलांगता की परस्परता विकलांग लड़कियों को दोहरी वंचना का शिकार बनाता है।

शिक्षा में लैंगिक असमानता

अकारण अथवा संयोगिक नहीं है कि पित्तृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्थापित स्कूली व्यवस्था के अनुभव लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग होते हैं, लड़के और लड़कियों की शैक्षिक अवसरों तक पहुँच असमान है और लड़कियों की शैक्षिक उपागम्यता में बाधाएं अधिक हैं, राज्य व परिवार दोनों लड़कियों को शैक्षिक सुविधाएँ व संसाधन लड़कों की तुलना में कम प्रदान करते हैं। लड़कियों की व्यावसायिक प्रत्याशाओं का उनकी रुचि, योग्यताओं व उपलब्धियों से उस प्रकार का सीधा संबंध नहीं दिखता जिस प्रकार का लड़कों के सन्दर्भ में दिखता है। यह पित्तृसत्ता का संरचनात्मक दोष है जिसमें लाभों का वितरण पुरुष पक्ष में होता है और वंचनाएँ स्त्रियों के हिस्से आती हैं। ये सामाजिक लाभ और वंचनाएँ शैक्षिक दायरे में भी घुसे चले आते हैं इसलिए शिक्षा व्यवस्था लैंगिक असमानता में लिपटी हुई है।

भारतीय शिक्षा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर पता चलता है कि उपनिवेश काल पूर्व भारतीय शिक्षा का स्वरूप अभिजात्यवर्गीय था जिसका विशिष्ट लक्षण वंचित समूहों का प्रणालीगत अपवर्जन था। ब्राह्मणवादी व ईरानी शिक्षा व्यवस्था अभिजात्यों व नवाबों के लिए थी जिसकी परिधि से अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ बाहर थीं। करुणा चानना ने 'द डायलेक्ट्स ऑफ ट्रेडिशन एंड मॉडर्निटी एंड विमेंस एजुकेशन इन इंडिया' में लिखा है कि उस समय लड़कियों का नामांकन औपचारिक धर्मनिरपेक्ष

स्कूलों में नहीं कराया जाता था (चानना, 1990)। राज्य द्वारा प्रबंधित औपचारिक शिक्षा का इतिहास भारत में उपनिवेश काल में प्रारंभ हुआ परन्तु ईसाई मिशनरियों ने भी देशज ढंग की शिक्षा व्यवस्था में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया। 19वीं सदी के धर्मसुधार आंदोलन काल में 'स्त्री शिक्षा' केन्द्रीय महत्व का विषय रहा और समाज सुधारकों के प्रयासों के चलते इस काल में स्त्री शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति भी हुई परन्तु 'यह उल्लेखनीय है कि महिलाओं के लिए शिक्षा की जरुरत किस भाषा, किस तर्क या किस बोली में अभिव्यक्त की गयी। बेहतर पत्नी और माँ के निर्माण में मदद करने के लिए महिला शिक्षा एक मध्यवर्गीय हिंदू पहचान और सभ्यता निर्मित करने वाले एक नैतिक कर्म के रूप में सामने आयी। स्त्री शिक्षा एक राष्ट्रीय निवेश था, जिसका मकसद उन्हें एक अच्छी गृहणी और अपने विवाहित जीवन में एक उत्तम और ज्ञानवान सहचरी बनाना था' (चारु गुप्ता, 2010) यह स्त्री शिक्षा का उपकरणवादी नजरिया ही है।

स्वतंत्रता पश्चात निर्मित भारतीय संविधान लोकतन्त्र, समता, स्वतंत्रता व न्याय को प्राप्य मूल्यों के रूप में स्वीकार करता है तथा दमनकारी सत्ता संरचनाओं के विरोध में खड़े होते अनुच्छेद 15(3) के तहत यह उपबंध करता है कि राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लैंगिक, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। इसके साथ ही संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अनुसार इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगी। इस प्रकार संविधान लैंगिक विभेद का प्रतिषेध करता है तथा स्त्रियों के कल्याणार्थ संवेदनशीलता प्रकट करता है। परन्तु व्यावहारिक वास्तविकता इस संवैधानिक व्यवस्था की निरंतरता में नहीं है क्योंकि व्यावहारिक जीवन मात्र संविधान के सैद्धांतिक नियमों से ही नहीं वरन व्यक्तियों के दृष्टिकोण, प्रस्थिति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, धर्म, रुढ़ियों एवं आदतों से संचालित होता है।

स्त्री व विकलांगता : दोहरी वंचना का शिकार विकलांग छात्राएँ

पितृसत्ता में स्त्रियों की स्थिति अधीनस्थ, दमित व शोषित होती है परन्तु जब स्त्री होना वंचना के अन्य आधारों जैसे निर्धनता, निम्न जाति, अल्पसंख्यक समुदाय, ग्रामीण पृष्ठभूमि, विकलांगता आदि के साथ गुँथा हुआ होता है तब स्थिति अधिक बदहाल होती है और ऐसे में स्त्रियाँ दोहरे, तिहरे अथवा बहुहाशियाकरण का शिकार होती हैं। ऐसा ही एक समूह विकलांग लड़कियों का है जिनकी सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक चुनौतियाँ अन्य लड़कियों की अपेक्षा कहीं अधिक होती हैं। जनगणना 2001 के अनुसार भारत की 21 मिलियन जनसंख्या विकलांग व्यक्तियों की है जिसमें से 42-43% स्त्रियाँ हैं (Census of India, 2001)।

अपनी विशाल जनसँख्या के बावजूद विकलांग स्त्रियों की चुनौतियाँ अलक्षित व अधिकार अचिन्हित हैं। 'जेंडर' और 'विकलांगता' ये दोनों केवल जैव-वैज्ञानिक संप्रत्यय नहीं हैं अपितु इनके साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व कानूनी अर्थ गुंथे हुए हैं। यह जैविक अन्तर नहीं अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक विभेद है जो पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लिए उत्तरदायी है। इसी प्रकार विकलांगता शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण व्यक्तियों के समक्ष चुनौतियाँ अवश्य पेश करता है परन्तु अक्षमता सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों, आर्थिक दुर्बलता व संरचनात्मक बाधाओं की उपज है जो शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण व्यक्तियों की संभावनाओं को व्यापक रूप से सीमित कर देता है। स्त्री अधिकारों की मांग करने वालों की दृष्टि से विकलांगता का चिंतन छूट जाता है और विकलांग हितों के प्रति समर्पित व्यक्ति इसके स्त्री पक्ष की गंभीरता पर ध्यान देना भूल जाते हैं, इसलिए विकलांग स्त्रियों की स्थिति विकलांग पुरुषों की तुलना में भी शोचनीय है और गैर-विकलांग स्त्रियों की तुलना में भी। जनगणना 2001 के अनुसार 58% विकलांग पुरुष साक्षर है जबकि विकलांग स्त्रियों में मात्र 37% साक्षर हैं तथा इसी जनगणना के आंकड़ों के अनुसार विकलांग व्यक्तियों की कुल आबादी में से केवल 3% व्यक्ति स्नातक अथवा उससे उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त हैं (Disability in India & A Statistical Profile, 2011)। उच्च शिक्षा में विकलांग व्यक्तियों की पहुँच के सन्दर्भ में दोनों लिंगों के लिए पृथक आँकड़े प्राप्त नहीं हुए परन्तु जिस समुदाय की मात्र 37% आबादी साक्षर है उसकी उच्च शिक्षा में क्या स्थिति है यह विचारणीय है क्योंकि उच्च शिक्षा ही रोजगार की संभावनाओं का विस्तार करती है और आत्मनिर्भर व सम्मानित जीवन को सुनिश्चित करने में सहायक है। इसके साथ ही यह उच्च शिक्षा ही है जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक व आर्थिक वर्चस्व अथवा हाशियाकरण की स्थिति सर्वाधिक स्पष्ट रूप से दिखती है। विकलांग छात्राओं की उच्च शिक्षा में पहुँच को समझने हेतु हमने भारत के एक लंबे समय से स्थापित विश्वविद्यालय 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' के सत्र 2012-13 में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के पंजीकरण की जेंडर ऑडिट की। यह विश्वविद्यलाय पुराना होने के साथ-साथ पूर्वांचल की शैक्षिक जरुरतों को पूरा करने वाला भी है अत: इस विश्वविद्यालय में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के पंजीकरण की जेंडर ऑडिट पूर्वांचल क्षेत्र में विकलांग छात्राओं की उच्च शिक्षा में पहुँच को समझने में तो कारगर है ही, साथ ही इसके माध्यम से यह समझा जा सकता है यह स्थिति लगभग सभी विश्वविद्यालयों की होगी। विश्वविद्यालय में विकलांग विद्यार्थियों के नामाकन की जेंडर ऑडिट से जो तस्वीर हमारे सम्मुख उभर कर आई उसे आगे प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-1

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सत्र 2012-13 में हुआ नया पंजीकरण

कुल पंजीकरण	11973
शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण कुल विद्यार्थियों की संख्या	208
शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण छात्रों की संख्या	160
शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण छात्राओं की संख्या	48

स्रोत: न्यू एनरोलमेंट, कैटेगोरी वाइज एंड फैकल्टी वाइज स्टूडेंट स्ट्रेंथ, शैक्षणिक अनुभाग, केन्द्रीय कार्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यलाय, 2012-13

तालिका-1 से स्पष्ट है कि काशी हिंदू विश्वविद्यालय में सत्र 2012-13 में कुल 208 शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थी पंजीकृत हुए। सत्र 2012-13 के कुल पंजीकरण अर्थात 11973 के मुकाबले यह मात्र 1.73% है अर्थात उच्च शिक्षा में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के लिए आरक्षित कुल 3% सीटें भी नहीं भर पाईं। नामांकित 208 शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों में से 160 छात्र व 48 छात्राएँ हैं। रेखाचित्र 1 से स्पष्ट है कि विकलांग विद्यार्थियों द्वारा भरी गयी कुल सीटों के मात्र 23.07% सीटों पर ही विकलांग छात्राओं का कब्ज़ा हुआ।

रेखाचित्र-1

शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों का लिंगवार नामांकन 2012-13

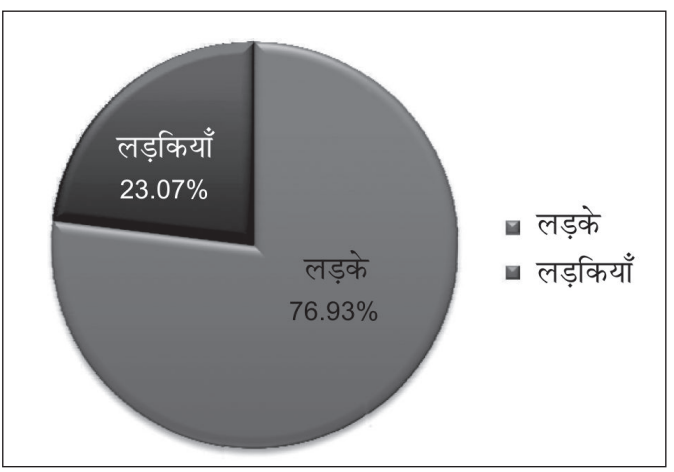

इस प्रकार उच्च शिक्षा में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के मध्य लैंगिक असमानता बहुत गहरी दिखती है जहाँ कुल सीटों के लगभग एक-चौथाई मात्र पर ही छात्राएँ हैं।

तालिका-2

उच्च शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विकलांग छात्राओं की स्थिति

शैक्षिक स्तर	शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों की कुल संख्या	छात्र	छात्राएँ	छात्रों का प्रतिशत	छात्राओं का प्रतिशत
स्नातक	120	96	24	80	20
परास्नातक	61	43	18	70.5	29.5
शोध / एम.फिल.	7	6	1	85.7	14.3
डिप्लोमा/सर्टीफिकेट	20	15	5	75	25

रेखाचित्र-2

उच्च शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विकलांग छात्राओं की स्थिति

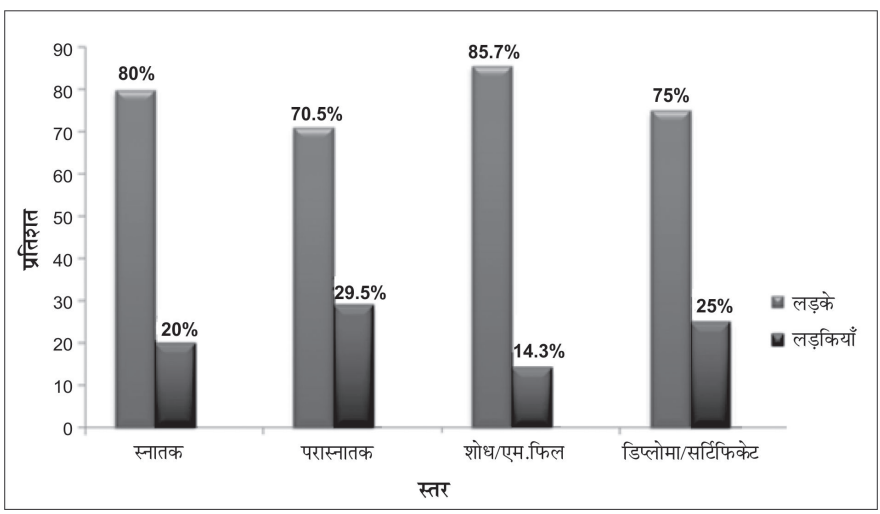

रेखाचित्र-2 से स्पष्ट है कि विकलांग छात्राएँ उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विकलांग विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त कुल सीटों के एक-तिहाई से भी कम हैं। शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण छात्रों की तुलना में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण छात्राओं की मौजूदगी उच्च शिक्षा के समस्त स्तरों पर कम है। स्नातक स्तर पर जहाँ छात्राएँ छात्रों की तुलना में एक चौथाई हैं वहीं उच्च शिक्षा के सर्वोच्च स्तर 'शोध स्तर' तक आते-आते छात्राओं की उपस्थिति छात्रों की तुलना में 1/6 हो गयी है। निरपेक्ष स्थिति का विश्लेषण करने पर तो स्थिति और भी विद्रूप दिखती है जहां शोध स्तर पर पूरे विश्वविद्यालय में मात्र एक विकलांग छात्रा पंजीकृत है। हालाँकि सत्र 2012-13 में स्नातक स्तर (20%) की तुलना में परास्नातक स्तर पर (29.5%) छात्राएं अधिक हैं और यह पिछले सत्र 2011-12 के 16.6% से अधिक है।

विश्वविद्यालय में पंजीकृत विकलांग छात्राओं की व्यावसायिक संभावनाओं को समझने के लिए हमनें पंजीकरण स्थिति की संकायवार जाँच की।

तालिका-3
उच्च शिक्षा में विकलांग छात्राओं की संकायवार स्थिति

क्रम संख्या	संस्था/संकाय	शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
1.	महिला महाविद्यालय	18	37.5
2.	कला	9	18.75
3.	सामाजिक विज्ञान	6	12.5
4.	विज्ञान	5	10.41
5.	दृश्यकला	3	6.25
6.	मेडिसिन	2	4.17
7.	शिक्षा	2	4.17
8.	विधि	2	4.17
9.	वाणिज्य	1	2.08
	कुल योग	48	100

तालिका-3 में आँकड़ों के संकायवार विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि विश्विद्यालय के कुल 16 संकायों में से 9 संकायों में ही विकलांग छात्राएँ पंजीकृत हैं। इन 9 संकायों में से दृश्यकला, मेडिसीन, शिक्षा और विधि व्यावसायिक प्रकृति के क्षेत्र है जबकि महिला महाविद्यालय, कला, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान वाणिज्य 'डिग्री कोर्सेस' चलाते हैं। इस प्रकार विश्वविद्यालय में पंजीकृत 48 विकलांग छात्राओं में से मात्र 19% छात्राएँ ही (9 छात्राएँ) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पंजीकृत हैं जबकि 81% छात्राएँ (39 छात्राएँ) गैर-व्यावसायिकपाठ्यक्रमों में दाखिल हुई हैं, जिसे रेखाचित्र 4 में प्रदर्शित किया गया है। जिन 7 संकायों में विकलांग छात्राओं का कोई पंजीकरण नहीं हुआ है उनमें से संस्कृत विद्या धर्म संकाय को छोड़कर अन्य सभी संकायों (प्रबंध, डेंटल, आयुर्वेद, कृषि विज्ञान, मंचकला तथा पर्यवारण व सतत पोषणीय विकास संकाय) में विश्वविद्यालय के तुलनात्मक रूप से महंगे व रोजगार बाजार में अधिक मांग वाले कोर्सेज हैं। इसी सत्र में पंजीकृत कुल 160 विकलांग छात्रों में से 28.13% छात्र (45 छात्र) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में मौजूद हैं अत: कहा जा सकता है कि विकलांग छात्राओं की उच्च शिक्षा के भविष्य में व्यावसायिक रूपांतरण की संभावनाएँ बेहद सीमित हैं और ये संभावनाएँ विकलांग छात्रों की तुलना में निश्चित रूप से कम हैं।

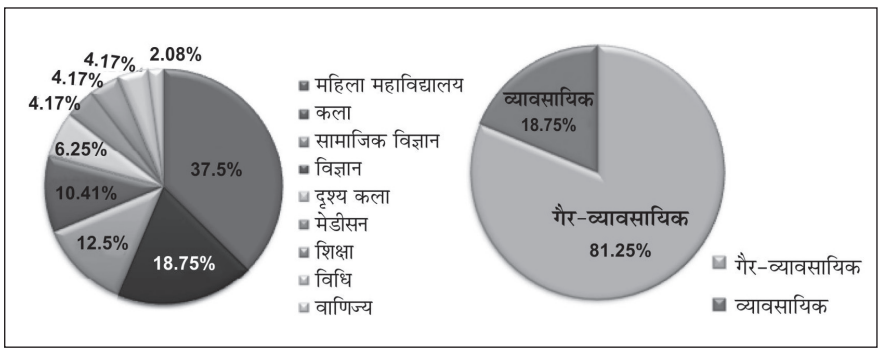

इस प्रकार सत्र 2012-13 में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के पंजीकरण आँकडों का जेंडर आधारित दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दिखता है कि–

- उच्च शिक्षा में विकलांग छात्रों की तुलना में छात्राएँ कम पहुचँती हैं,
- इसके उच्चतम पायदानों तक कम चढ़ पाती है, और
- रोजगारपरक पाठ्यक्रमों में भी कम जगह प्राप्त कर पाती हैं।

ये आंकड़ें विकलांगता के दायरे में मौजूद लैंगिक असमानता को पुष्ट करते हैं। विकलांग लड़कियों की शैक्षिक समानता दिशा में अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, संरचनात्मक व व्यावहारिक बाधाएं मौजूद हैं। समाज द्वारा अपेक्षित जेंडर भूमिकाओं को निभाने का दबाव लड़कियों की शैक्षिक संभावनाओं को व्यापक रूप से सीमित करता है। लड़कों से परिवार के लिए 'प्रदाता' बनने की अपेक्षा की जाती है इसलिए आर्थिक क्षमता व कुशलता को बढ़ाने हेतु उन्हें शिक्षित किया जाता है परन्तु स्त्री से माँ, पत्नी और गृहिणी की भूमिकाओं के अपेक्षा कारण परिवार में स्त्री शिक्षा के प्रति उत्साह या उत्तरदायित्वभाव कम होता है। स्त्री शिक्षा का उद्देश्य, गुणवत्ता व प्रकृति इस सामाजिक अपेक्षा से व्यापक रूप से प्रभावित दिखता है। अच्छे विवाह की आशाओं से भी कई परिवार आज लड़कियों को 'कामभर शिक्षित' करने में विश्वास करने लगे हैं। दुर्भाग्यपूर्ण है कि विकलांग स्त्रियों के संबंध में समाज की रूढिबद्ध धारणा, बीमार, असहाय, अपरिपक्व, असमर्थ व अ-सेक्सुअल के रूप में है। स्त्री सौंदर्य व नारीत्व के सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से विकलांग स्त्रियों के मेल न खाने से परिवार ऐसा समझता है कि इनका विवाह नहीं होगा, ये पारिवारिक दायित्व भली प्रकार से नहीं निभा पाएँगी और न ही स्वतन्त्र रूप से आजीविका अर्जित कर पाएंगी, इसलिए गैर-विकलांग लड़कियों की शिक्षा के सन्दर्भ में परिवार-समाज के पास जो सीमित प्रेरणा मौजूद भी होती है वह विकलांग लड़कियों के सन्दर्भ में और भी घट जाती है। 'शर्म' अथवा सामाजिक उपहास के डर से कई परिवार अपनी विकलांग बेटियों को स्कूल अथवा किसी भी सार्वजनिक स्थान पर नहीं जाने देते इससे विकलांग लड़कियाँ अलगाव का शिकार होती।

शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक परिधि में प्रभावी पदों पर विकलांग स्त्रियों की अदृश्यता भी एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है जिसके चलते परिवार, समाज व स्वयं विकलांग लड़कियों के पास प्रेरणा का अभाव है। इस अदृश्यता का एक अन्य नकारात्मक परिणाम यह है कि विकलांग लड़कियों व स्त्रियों की चुनौतियों व समस्याओं से समाज व राज्य अपरिचित रह जाता है और इसके साथ ही स्वयं ये लड़कियाँ व स्त्रियाँ भी अपने अधिकारों व विकास के अवसरों से अभिज्ञ रह जाती हैं।

विकलांग लड़कियों की शैक्षिक पहुँच केवल जेंडर और विकलांगता से प्रभावित नहीं है बल्कि इस पर सामाजिक-आर्थिक स्थिति, ग्रामीण अथवा नगरीय पृष्ठभूमि व अन्य कारकों का भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है। विकलांगता और गरीबी में चक्रीय संबंध है। गरीब परिवारों में पौष्टिक भोजन व चिकित्सा के अभाव में भी

लड़कियाँ विकलांगता का शिकार होती हैं और इसके उलट विकलांगता चिकित्सा व अन्य आवश्यकताओं पर खर्च के चलते आर्थिक तंगी पैदा करता है। निर्धन परिवारों में जहाँ संसाधन पहले से बहुत कम है वहाँ विशेष आवश्यकता वाली लड़की की शिक्षा पर खर्च करने की अनिच्छा ज्यादा प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार स्कूलों, संरचनात्मक सुविधाओं, जागरूकता व प्रेरणा के अभाव में ग्रामीण विकलांग लड़कियाँ, शहरी विकलांग लड़कियों की तुलना में शैक्षिक परिदृश्य में अधिक पिछड़ जाती हैं।

विकलांग विद्यार्थियों की शिक्षा कुछ भौतिक व संरचनात्मक सहयोग की मांग करती है, विकलांग छात्राओं के संबंध में यह सहयोग विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षण संस्था के घर से दूर होने पर माता-पिता अपने विकलांग बेटे को स्कूल भेजने से वैसे नहीं चिंतित होते जैसे बेटी के संबंध में होते हैं क्योंकि साहसी व सामर्थवान के रूप में प्रचलित पुरुषों की रूढिबद्ध छवि से प्रेरित अभिभावक बेटे के प्रति अधिक विश्वस्त और चुनौतियों के लिए तैयार रहते हैं जबकि बेटियों की सक्षमता के प्रति आशंकित रहते हैं। स्त्रियों का यौन उत्पीड़न इस संबंध में अभिभावकों की चिंता को अधिक गहरा देता है। विकलांग लड़कियाँ व महिलाएँ अन्य लड़कियों की तुलना में शारीरिक व यौन शोषण की अधिक असुरक्षित शिकार होती हैं। ऐसे में सुगम व सुरक्षित परिवहन के अभाव तथा शारीरिक, भावनात्मक व यौन हिंसा के चलते परिवार विकलांग लड़कियों को स्कूलों में भेजने से कतराता है। लड़कियों की विशेष शारीरिक आवश्यकताओं के चलते कुछ विकलांग छात्राओं को सहयोग की आवश्यकता हो सकती है ऐसे में अस्वच्छ अथवा दुर्गम शौचालय उनके स्कूल छोड़ने का कारण हैं। सीढ़ियाँ, पतले गलियारे, दुर्गम मेज-कुर्सियां व शैक्षिक उपकरण, दुर्गम शौचालय या शौचालय का अभाव जैसे वास्तुशिल्पीय अवरोधों से भी विकलांग विद्यार्थियों की शिक्षा बाधित होती है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के आवश्यकतानुकूल शैक्षिक सामग्री व संसाधनों का अभाव भी विकलांग छात्राओं के शैक्षिक परिवेश में कम होने का कारण हो सकते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सहित भारत के अन्य उच्च शिक्षा संस्थान आज भी यह दावा नहीं कर सकते कि उनके भवन व अन्य शैक्षिक संसाधन पूरी तरह से विकलांगताग्रस्त व्यक्तियों/लड़कियों की आवश्यकतानुकूल हैं।

उपरोक्त तमाम बाधाओं के चलते विकलांग छात्राएँ प्राथमिक और विशेषकर उच्च माध्यमिक स्तर पर बहुत कम संख्या में नामांकित हैं इसलिए उच्च शिक्षा में उनकी अदृश्यता और बढ़ जाती है। गुणवत्तायुक्त स्कूली शिक्षा का अभाव, अभिभावकों व शिक्षकों की विकलांग छात्राओं से निम्न व्यावसायिक प्रत्याशाएं और इसलिए परिवार

का महंगे व्यावसायिक पाठयक्रमों में खर्च करने की अनिच्छा, स्वयं विकलांग छात्राओं की व्यावसायिक प्रत्याशाओं पर रूढिबद्ध जेंडर सामाजिक भूमिकाओं का प्रभाव तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से रोजगार प्रदाताओं का विकलांग स्त्री की योग्यता पर अविश्वास– ये सभी विकलांग छात्राओं के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में कम पहुँचने के कारण हो सकते हैं।

निष्कर्ष

'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' के सत्र 2012–13 में शारीरिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के पंजीकरण के उपर्युक्त विश्लेषित आंकड़े जेंडर व विकलांगता पर आधारित उस दोहरे विभेद जो विकलांग लड़कियों व स्त्रियों को मानवीय अनुभव के समस्त क्षेत्रों– शिक्षा, रोजगार, आय, भोजन, देखभाल, स्वास्थ्य, परिवार, विवाह आदि में उपेक्षित करती है, के व्यापक तस्वीर का मात्र एक छोटा हिस्सा निर्मित करते हैं और उस लैंगिक असमानता को पुष्ट करते हैं जो विकलांगता से अंतर्संबंधित हो अधिक उत्पीड़क हो जाती है।

विकलांगता का धरातलीय अनुभव जेंडर–निरपेक्ष नहीं है। स्त्री व विकलांगता के मिलान के चौराहे पर खड़ी विकलांग लड़कियाँ व स्त्रियाँ सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक जीवन में सर्वाधिक हाशियाकृत समूह का हिस्सा हैं इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री–समता अथवा विकलांग–समता पर चलने वाले विमर्शों में अनिवार्य रूप से स्त्री व विकलांगता की साझी स्थिति की विकटताओं पर ध्यान दिया जाए।

विकलांग व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा में आरक्षण की व्यवस्था विकलांग शिक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण सरकारी कदम है और निश्चित रूप से इससे लाभान्वित हो कुछ विकलांग छात्राएँ भी उच्च शिक्षा में पहुँच रही हैं परन्तु काशी हिंदू विश्वविद्यालय जैसे भारत के प्रतिष्ठित केन्द्रीय विश्वविद्यालय में भी विकलांग विद्यार्थियों का हुए कुल पंजीकरण के मुकाबले मात्र 1.7% होना अर्थात विकलांगों के लिये आरक्षित कुल 3% सीटों का भी लगभग आधा ही भर पाना चिंतित करता है और संसाधनों की कमी से जूझने वाले राज्य विश्वविद्यालयों अथवा महंगे निजी संस्थाओँ में विकलांग विद्यार्थियों विशेषकर विकलांग छात्राओं की पहुँच के संबंध में गंभीर आशंकाएँ उत्पन्न करता है। अत: उच्च शिक्षा में आरक्षण की व्यवस्था मात्र पर्याप्त नहीं है जब प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर ही विकलांग छात्राओं की संख्या बहुत कम है। बल्कि सरकार द्वारा ठोस और कहीं अधिक जमीनी हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है और निस्संदेह यह हस्तक्षेप जेंडर–संवेदनशील भी होना चाहिए। विकलांग अधिकारों की दिशा में मील

का पत्थर माने जाने वाला विकलांग व्यक्ति (समान अधिकार, अधिकारों का संरक्षण तथा सम्पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995 भी विकलांग स्त्रियों व लड़कियों के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं करता।

स्त्रियों तथा विकलांगों से सम्बंधित समस्त सरकारी नीतियों व कार्यक्रमों का स्पष्ट हिस्सा विकलांग स्त्रियों पर केंद्रित होना चाहिए। शैक्षिक वातावरण व पाठ्यक्रम विशेष आवश्यकता वाली छात्राओं की आवश्यताओं के प्रति जागरूक व संवेदनशील होना चाहिए। हम सही अर्थों में एक न्यायपूर्ण व मानवीय समाज का निर्माण तभी कर सकते हैं जब एक ऐसे सुरक्षित, विश्वस्त व सुगम्य सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक वातावरण का विकास कर सकें जिसमें हमारे समाज के शारीरिक व मानसिक चुनौतीपूर्ण सदस्यों विशेषकर स्त्रियों के पास अपने अधिकतम विकास के अवसर उपलब्ध हों और एक मानव होने के नाते यह उनका अधिकार है।

संदर्भ

विकलांग व्यक्ति (समान अधिकार, अधिकारों का संरक्षण तथा सम्पूर्ण सहभागिता) अधिनियम, 1995 www.rehabcouncil.nic.in@hindi@adhinayam.htm से उद्धृत दिनांक 21.03.13

चानना, करुणा (1990) *भारत में प्राथमिक शिक्षा में लैंगिक असमानता मानवाधिकार, परिप्रेक्ष्य,* शुक्ल व कुमार (सं.), *शिक्षा का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ,* नई दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी 2008 में संकलित, पृष्ठ 199.

गुप्ता, चारु (2010) *चाहे लक्ष्य, अनचाहे परिणाम : औपनिवेशिक उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा और पढ़ने का भय,* अखिलेश (सं.) लखनऊ, अंक 21, जनवरी 2010, पृष्ठ 43.

जनगणना रिपोर्ट 2001. www-censusindia.gov.in@Census_And_You@disabled_population.aspx से उद्धृत दिनांक 27.07.13

डिसएबिलिटी इन इंडिया – ए स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल, 2011 www.mospi.nic.in@Mospi_upload@disability_india_staistical_profile_17mar11.html से उद्धृत दिनांक 29.07.13

न्यू एनरोलमेंट, कैटेगोरी वाइज एंड फैकल्टी वाइज स्टूडेंट स्ट्रेंथ 2012–13, शैक्षणिक अनुभाग, केन्द्रीय कार्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यलाय.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

सेवापूर्व प्रशिक्षार्थियों हेतु कंप्यूटर आधारित शिक्षण एवं मूल्यांकन

अर्चना वेरूलकर*

सारांश

सेवापूर्व प्रशिक्षण का उद्देश्य है ऐसे शिक्षक तैयार करना जो बच्चों को उनकी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार पढ़ा सकें और बच्चों को स्वयं करके सीखने हेतु प्रेरित करें जिससे बच्चे ज्ञान का सृजन स्वयं कर सकें। डी.एड. (डिप्लोमा इन एजूकेशन) एक द्विवर्षीय पाठ्यक्रम है जिसमें कक्षा 12वीं के पश्चात शिक्षक बनने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश लेते हैं। बच्चों के सीखने की गति एवं स्तर को समझकर पाठ्यवस्तु को कैसे नए तरीकों से पढ़ाया जाए और कैसे उनका मूल्यांकन किया जाए ये सब बातें प्रशिक्षार्थी सीखते हैं। प्रशिक्षण के दौरान जो बातें वे सीखते हैं उसका उपयोग वे अध्यापन के समय कर सकते हैं। सीखने-सिखाने एवं मूल्यांकन के नए तरीके जानना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है जिससे वे परंपरागत तरीकों को छोड़कर नवाचारी तरीके अपना सकें। वर्तमान अध्ययन में डी.एड़ के प्रशिक्षार्थियों से प्रोजेक्ट कार्य के अंतर्गत पावरपाइंट प्रेजेंटेशन बनवाकर समूह में प्रस्तुतीकरण करवाया गया तथा उसके आधार पर उनका मूल्यांकन किया गया। इसके माध्यम से उन्होंने यह सीखा कि अपनी शालाओं में समूह कार्य कैसे करवाया जाए एवं शिक्षण एवं मूल्यांकन में तकनीक का उपयोग कैसे किया जाए।

*सहायक प्राध्यापक, डाइट, रायपुर (छत्तीसगढ़)

प्रस्तावना

पिछले कुछ वर्षों में सीखने-सिखाने की पद्धति में काफी बदलाव आया है। व्याख्यान पद्धति की अपेक्षा स्वयं करके सीखने पर बल दिया जा रहा है। इसके कारण शिक्षक की भूमिका सुविधादाता की हो गई है जिसमें उसे अपने विद्यार्थियों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराना है जिससे उनकी सहभागिता अधिक हो एवं उनका ज्ञान स्थायी हो सके। कंप्यूटर के माध्यम से शिक्षण में इन सभी बातों का समावेश रहता है और विद्यार्थी स्वयं करके सीखते हैं।

सेवा-पूर्व प्रशिक्षण में डी.एड. के विद्यार्थियों को कंप्यूटर की भी शिक्षा दी जाती है। उसका उपयोग वे स्वयं के सीखने हेतु भी करते हैं। इसके अतिरिक्त शालाओं में बच्चों को किस प्रकार कंप्यूटर के माध्यम से सिखाया जा सकता है उसे भी सीखते हैं।

कंप्यूटर आधारित शिक्षण

राष्ट्रीय फोकस समूह द्वारा शैक्षिक तकनीकी के आधार पत्र में कहा गया है कि ''सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान

- शिक्षकों को उन लचीले मॉडलों से परिचित कराना जो पाठ्यक्रमों के लक्ष्यों तक पहुंचने में सक्षम हों।
- मीडिया और तकनीकी के माध्यमों से होने वाली अध्ययन पद्धतियों से परिचित करवाना ताकि शिक्षक के शिक्षण अधिगम के कार्यक्रमों का यह एक अभिन्न अंग बन सके।''

कंप्यूटर आधारित शिक्षण को शिक्षण प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बनाना आवश्यक है। कंप्यूटर शिक्षण को एक अलग-थलग गतिविधि के रूप में न करवाकर इसे कक्षागत प्रक्रियाओं में शामिल किया जाना चाहिए। कंप्यूटर आधारित शिक्षण के द्वारा शिक्षण एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया आनंददायी बनाई जा सकती है। अलग-अलग स्तरों के विद्यार्थियों हेतु अलग-अलग प्रकार की गतिविधियां कराई जा सकती हैं।

प्राथमिक स्तर पर सी.डी. का प्रयोग करके बच्चों को स्व-अधिगम हेतु प्रेरित किया जा सकता है। इसमें भाषा में अक्षरों की पहचान, नए शब्द सीखना, वाक्य पढ़ना एवं कहानी-कविता आदि हेतु कंप्यूटर का उपयोग किया जा सकता है। इसमें सीखने के साथ ही तत्काल स्व-मूल्यांकन भी किया जा सकता है। गणित में संक्रियाओं पर आधारित प्रश्न तथा पर्यावरण शिक्षण में दूर-दराज के क्षेत्रों की तथा विभिन्न स्थानों में पाए जाने

वाले पेड़-पौधों, जानवरों आदि की जानकारी उपलब्ध कराई जा सकती है। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर पर कठिन अवधारणाओं को वीडियो के माध्यम से समझाया जा सकता है। हाईस्कूल एवं हायर सेकेण्डरी स्तर पर भी विद्यार्थी स्वयं इन्टरनेट के माध्यम से जानकारी एकत्रित करके प्रोजेक्ट कार्य कर सकते हैं। इसके आधार पर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है। सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षणों में प्रशिक्षार्थियों को कंप्यूटर के द्वारा सीखने-सिखाने एवं मूल्यांकन की विभिन्न विधियों से परिचित कराया जा सकता है जिससे वे शालाओं में इसका उपयोग कर सकें।

अध्ययन के उद्देश्य

अध्ययन के उद्देश्य निम्नानुसार हैं -

- प्रशिक्षार्थियों द्वारा सीखने-सिखाने की प्रकिया में कंप्यूटर का उपयोग करना सीखना।
- उनकी व्यक्तिगत दक्षता का विकास करना।
- सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर एवं आनंददायी बनाना।
- मूल्यांकन हेतु विभिन्न तरीके अपनाना।

आवश्यकता

20वी सदी के अंत से ही कंप्यूटर का उपयोग होना शुरु हो गया था। 21वी सदी प्रारंभ होने के पश्चात धीरे-धीरे सारे काम कंप्यूटर से होने लगे हैं। सभी वर्गों के लोगों हेतु कंप्यूटर की जानकारी होना आवश्यक हो गया है। यदि शिक्षा के क्षेत्र में कंप्यूटर का उपयोग सीखने-सिखाने के साथ ही मूल्यांकन के लिए भी होने लगे तो बच्चों को यह बहुत लाभदायक होगा। शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू होने के बाद शालाओं में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई है। परन्तु शिक्षक अभी भी उन्हीं पद्धतियों को अपनाते हैं जिनके द्वारा उनका मूल्यांकन हुआ है जिसमें पेपर-पेंसिल परीक्षा मुख्य है। यह बात केवल शालाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं पर भी लागू है।

शिक्षक शिक्षा के संबंध में नेशनल करिकुलम प्रेमवर्क फॉर टीचर एजूकेशन 2009 में कहा गया है कि मौजूदा अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की एक चुभती हुई कमी छात्र-अध्यापक का मूल्यांकन करने की पद्धति है। यह अत्यधिक मात्रात्मक एवं संकीर्ण दायरे वाली है। शिक्षक-शिक्षा के गुणात्मक आयाम, अन्य व्यावसायिक क्षमताएं, अभिवृत्ति व

मूल्य आकलन की परिधि में नहीं आ पाते। ऊपर से यह सतत् भी नहीं है जैसा इसे होना चाहिए। शिक्षक-शिक्षा का दायरा बहुत बड़ा है और प्रशिक्षण के पूरे दौर में पाठ्यचर्या के बिन्दु एक विचारपूर्ण क्रम से आते रहते हैं जिनका उसी स्तर पर मूल्यांकन होना चाहिए ताकि प्रशिक्षुओं को यथोचित पश्चपोषण दिया जा सके और वे उसे प्रक्रिया की मूलभावना व प्रक्रिया से परिचित हो सकें।

अत: वर्तमान अध्ययन में प्रोजेक्ट कार्य के अंतर्गत समूह में कार्य करके प्रस्तुतीकरण करवाकर प्रशिक्षार्थियों का मूल्यांकन किया गया। डी.एड़. प्रथम वर्ष के प्रशिक्षार्थियों को 10 समूहों में बांटा गया। उन्होंने समूह में कार्य करके विषयवस्तु पर चर्चा की और पावरपाइंट प्रेजेंटेशन बनाया और प्रेजेंटेशन भी किया। प्रस्तुतीकरण बनाने से प्रशिक्षार्थियों ने कंप्यूटर पर सीखे हुए ज्ञान का अनुप्रयोग सीखा। पूरी कक्षा के सामने उसे प्रस्तुत करने से उनकी व्यक्तिगत दक्षता का भी विकास हुआ तथा उन्हें सीखने-सिखाने की नई प्रक्रिया सीखने को मिली। मूल्यांकन के पारंपरिक तरीके की अपेक्षा उन्होंने स्व-मूल्यांकन एवं साथियों का मूल्यांकन भी किया। उनके द्वारा अपने साथियों का मूल्यांकन भी किया गया। सभी समूहों ने बाकी के 9 समूहों में से श्रेष्ठ 3 समूह बताए। श्रेष्ठ समूह के चयन का आधार था–

- उनके प्रस्तुतीकरण की शैली,
- समूह का तालमेल,
- उनके द्वारा बनाया पावर पाइंट,
- सदन के प्रश्नों के उत्तर।

शोध प्रक्रिया

अध्ययन विधि

वर्तमान अध्ययन की विधि सर्वेक्षण विधि है।

न्यादर्श

न्यादर्श में डाइट, रायपुर में अध्ययनरत डी.एड. प्रथम वर्ष के सभी 95 प्रशिक्षार्थी सम्मिलित थे। सभी ने समूह में कार्य करके विषयवस्तु को पढ़ा, समझा एवं उस पर पावरपाइन्ट प्रेजेंटेशन बनाया परन्तु जिस दिन प्रस्तुतीकरण किया गया उस दिन कुछ प्रशिक्षार्थी अनुपस्थित थे। उसके पश्चात जिस दिन उनसे रेटिंग स्केल भरवाई गई उस दिन भी कुछ प्रशिक्षार्थी अनुपस्थित थे। अत: अध्ययन के आंकडे 58 प्रशिक्षार्थियों पर आधारित हैं।

उपकरण

उपकरण के रूप में एक 5 बिन्दुओं के स्व-निर्मित रेटिंग स्केल का उपयोग किया गया था। इसमें 20 कथन थे। उक्त कथन अध्ययन हेतु लिए गए चार उद्देश्यों पर आधारित थे।

अध्ययन का विश्लेषण

पावरपाइंट प्रेजेंटेशन के बाद उन्हें एक रेटिंग स्केल भरने के लिए दी गईं तत्पश्चात् प्राप्त आंकडों का विश्लेषण किया गया।

उद्देश्य 1 : कंप्यूटर क्षमता का विकास

प्रशिक्षार्थियों को कंप्यूटर का ज्ञान तो था परन्तु उन्होंने कभी इस प्रकार उसका उपयोग नहीं किया था। इस संबंध में उनको कुछ कथन दिए गए जिससे ये पता चल सके कि उनकी कंप्यूटर क्षमता का विकास हुआ है या नहीं।

तालिका-1

कंप्यूटर क्षमता का विकास (प्रतिशत में)

कथन	मुझे कंप्यूटर पर पावर पाइंट प्रेजेंटेशन बनाना अच्छा लगा।	मुझे पावर पाइंट के माध्यम से प्रेजेंटेशन करना अच्छा लगा।	कंप्यूटर का उपयोग करने में मेरा आत्मविश्वास बढ़ा।	कंप्यूटर द्वारा प्रस्तुतीकरण अन्य क्षेत्रों एवं विषयों में भी लाभदायक
पूर्णत: सहमत	78	91	64	71
सहमत	21	9	17	29
पता नहीं	0	0	9	0
असहमत	2	2	10	0
पूर्णत: असहमत	0	0	0	0

98% प्रशिक्षार्थियों को कंप्यूटर पर पावरपाइंट प्रेजेंटेशन बनाना एवं प्रस्तुत करना अच्छा लगा। परन्तु इससे कंप्यूटर का उपयोग करने में सभी का आत्मविश्वास नहीं बढ़ा। केवल 64% प्रशिक्षार्थी इस बात से पूर्णत: सहमत तथा 17% सहमत हैं कि कंप्यूटर का उपयोग करने में उनका आत्मविश्वास बढ़ा है जबकि 9% प्रशिक्षार्थियों को पता नहीं एवं 10%

इससे असहमत हैं। सभी प्रशिक्षार्थी इस बात से सहमत हैं कि अन्य क्षेत्रों एवं विषयों में भी कंप्यूटर द्वारा प्रस्तुतीकरण लाभदायक होगा।

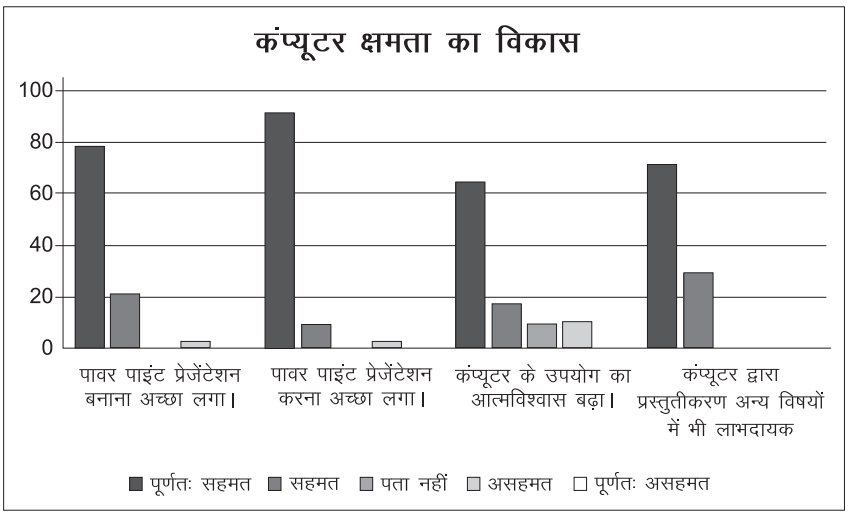

उद्देश्य 2 : व्यक्तिगत क्षमता का विकास

किसी भी प्रशिक्षार्थी ने पूर्व में कभी पावर पाइंट प्रेजेंटेशन नहीं किया था। अतः उन्हें जब प्रोजेक्ट कार्य के रूप में पावर पाइंट प्रेजेंटेशन बनाने के लिए कहा गया तो उनमें आत्मविश्वास की कमी थी। परन्तु प्रस्तुतीकरण करने के बाद बहुत अच्छा लगा।

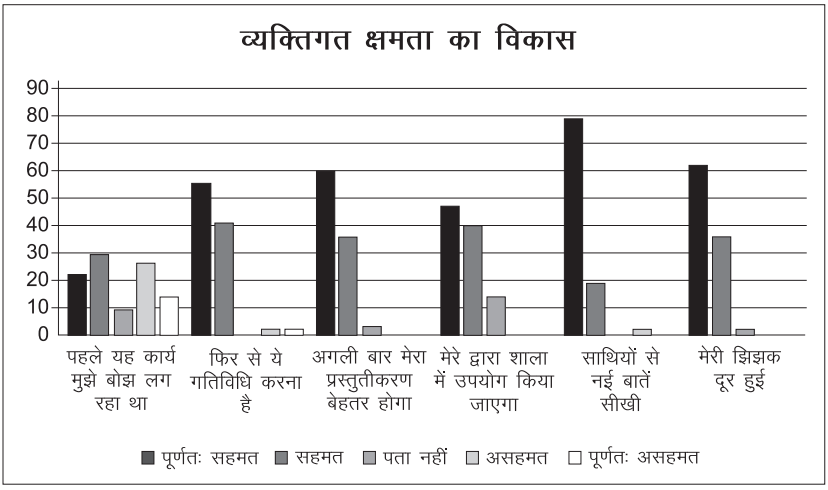

तालिका-2

व्यक्तिगत क्षमता का विकास (प्रतिशत में)

	प्रस्तुतीकरण से पहले यह कार्य मुझे बोझ लग रहा था।	मैं फिर से इस गतिविधि को करना चाहूंगा/ चाहूंगी।	मैं अगली बार बेहतर ढंग से प्रस्तुतीकरण कर पाउंगा/पाउंगी।	इसका उपयोग मैं अपनी शाला में कर पाउंगा/ पाउंगी।	साथियों का प्रस्तुतीकरण देखकर नई बातें सीखी।	प्रस्तुतीकरण करने से मेरी झिझक दूर हुई
पूर्णत: सहमत	22	55	60	46	79	62
सहमत	29	41	37	40	19	36
पता नहीं	9	0	3	14	0	2
असहमत	26	2	0	0	2	0
पूर्णत: असहमत	14	2	0	0	0	0

22% प्रशिक्षार्थी पूर्णत: सहमत थे कि प्रस्तुतीकरण से पहले यह कार्य बोझ लग रहा था, 29% सहमत थे, 9% कह नहीं सकते थे, 26% असहमत थे तथा 14% पूर्णत: असहमत थे। केवल 4% प्रशिक्षार्थी ऐसे थे जो इस गतिविधि को फिर से करना नहीं चाहते थे। लगभग 97% को यह विश्वास था कि अगली बार वे बेहतर ढंग से प्रस्तुतीकरण कर पाएंगे। 86% प्रशिक्षार्थी इस बात से सहमत अथवा पूर्णत: सहमत थे कि वे इसका उपयोग अपनी शाला में भी कर पाएंगे जबकि 14% को इस बात का विश्वास नहीं था। सिवाय 2% प्रशिक्षार्थी के सभी ने साथियों का प्रस्तुतीकरण देखकर नई बातों को सीखा। 98% प्रशिक्षार्थियों का मानना था कि प्रस्तुतीकरण करने से उनकी झिझक दूर हुई।

उद्देश्य 3 : सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर एवं आनन्ददायी बनाना

सेवापूर्व प्रशिक्षार्थी भविष्य में जब शिक्षक बनेंगे तो उन्हें सीखने–सिखाने की अलग–अलग विधाओं को जानना आवश्यक है। उन्हें जो कार्य दिया गया था उसमें तकनीक का उपयोग एवं समूह कार्य करना सम्मिलित था।

तालिका–3

सीखने सिखाने की प्रक्रिया (प्रतिशत में)

	मुझे सीखने-सिखाने की नई तकनीक जानने का अवसर मिला	मुझे यह नवाचार अच्छा लगा	समूह में प्रस्तुतीकरण करना मुझे अच्छा लगा	विषयवस्तु की समझ बनाने में मदद मिली	सीखने सिखाने की यह पद्धति पारंपरिक पद्धति से बेहतर है
पूर्णत: सहमत	83	78	86	67	76
सहमत	17	18	14	31	24
पता नहीं	0	2	0	2	0
असहमत	0	2	0	0	0
पूर्णत: असहमत	0	0	0	0	0

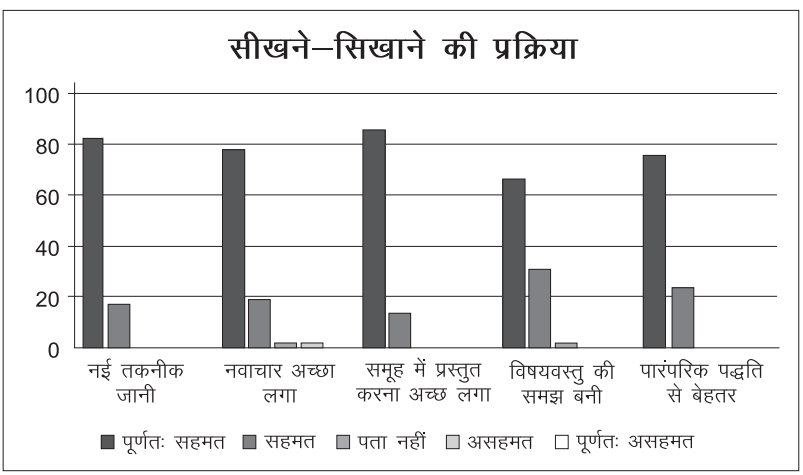

सभी प्रशिक्षार्थियों ने यह माना कि उन्हें सीखने–सिखाने की नई तकनीक जानने का अवसर मिला तथा यह पद्धति पारंपरिक पद्धति से बेहतर है। समूह में प्रस्तुतीकरण करना

भी सभी को अच्छा लगा। केवल 2% प्रशिक्षार्थियों को यह नवाचार अच्छा नहीं लगा जबकि 2% प्रशिक्षार्थी निश्चित रूप से कुछ कह नहीं सके, बाकी सभी को अच्छा लगा। 2% प्रशिक्षार्थियों ने यह भी माना कि विषयवस्तु की समझ बनी या नहीं ये वे नहीं कह सकते। 98% ने माना कि विषयवस्तु की समझ बनाने में उन्हें मदद मिली।

उद्देश्य 4 : मूल्यांकन के तरीके

प्रस्तुतीकरण के बाद प्रशिक्षार्थियों से स्वयं के प्रस्तुतीकरण के बारे में अभिमत मांगा गया। उनके साथियों ने भी उनका मूल्यांकन किया। साथ ही शिक्षक द्वारा भी उनके प्रस्तुतीकरण पर अभिमत दिया गया।

तालिका-4

सीखने सिखाने की प्रक्रिया (प्रतिशत में)

	मेरे प्रस्तुतीकरण में क्या कमियां रह गई यह मुझे स्वयं भी महसूस हुआ	**अपने साथियों का मूल्यांकन करना मुझे अच्छा लगा**	**जब हमारे साथियों ने हमारे समूह का मूल्यांकन किया तो मुझे अच्छा लगा**	**शिक्षक द्वारा हमारा मूल्यांकन करके सुझाव दिए गए**	**मूल्यांकन का यह तरीका केवल प्रश्नोत्तर लिखने की अपेक्षा बेहतर है**
पूर्णत: सहमत	53	67	57	79	72
सहमत	31	28	34	17	26
पता नहीं	5	2	7	0	0
असहमत	9	3	2	3	2
पूर्णत: असहमत	2	0	0	0	0

53% प्रशिक्षार्थी इस बात से पूर्णत: सहमत थे कि प्रस्तुतीकरण करने के बाद क्या कमियां रह गई यह बात उन्हें स्वयं महसूस हुई जबकि 31% प्रशिक्षार्थी इस बात से सहमत हैं। 5% प्रशिक्षार्थियों को पता नहीं चला, 9% असहमत थे जबकि 2% पूर्णत: असहमत थे। इस प्रकार कुल 16% प्रशिक्षार्थी स्व-मूल्यांकन सही तरह नहीं कर पाए। 95% प्रशिक्षार्थियों को साथियों का मूल्यांकन करना अच्छा लगा लेकिन जब साथियों ने उनका मूल्यांकन किया तो केवल 91% प्रशिक्षार्थियों को ही अच्छा लगा। 98% प्रशिक्षार्थियों को मूल्यांकन करने का यह तरीका केवल प्रश्नोत्तर लिखने की अपेक्षा बेहतर लगा।

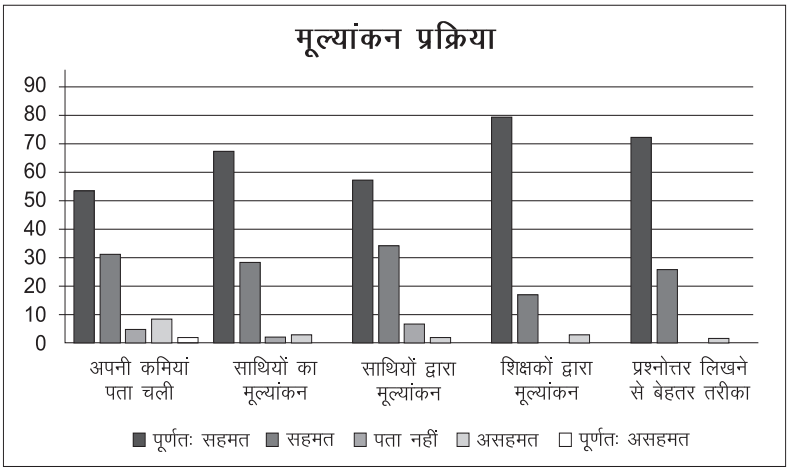

निष्कर्ष

- लगभग सभी प्रशिक्षार्थियों को कंप्यूटर पर पावरपाइंट प्रेजेंटेशन बनाना एवं प्रस्तुतीकरण करना अच्छा लगा तथा उन्होंने माना कि इसका उपयोग अन्य विषयों एवं क्षेत्रों में भी किया जा सकता है।
- कंप्यूटर का उपयोग करने में 81% प्रशिक्षार्थियों का आत्मविश्वास बढ़ा। अतः इस प्रकार के आयोजन बार-बार करने से सभी प्रशिक्षार्थियों का आत्मविश्वास बढ़ सकता है।
- 51% प्रशिक्षार्थियों को पहले यह कार्य बोझ लग रहा था परन्तु प्रस्तुतीकरण के पश्चात 95% से अधिक ने माना कि प्रस्तुतीकरण करने से उनकी झिझक दूर हुई, वे फिर से इन गतिविधियों को करना चाहेंगे एवं अगली बार बेहतर ढंग से प्रस्तुत करेंगे।
- सभी प्रशिक्षार्थियों ने माना कि उन्हें सीखने-सिखाने की एक नई पद्धति जानने का अवसर मिला एवं यह पद्धति पारंपरिक पद्धति से बेहतर लगी।
- 84% प्रशिक्षार्थी स्व-मूल्यांकन कर पाए, 95% को साथियों का मूल्यांकन करना अच्छा लगा पर 91% को ही साथियों द्वारा मूल्यांकन करवाया जाना अच्छा लगा। 98% प्रशिक्षार्थियों को मूल्यांकन का तरीका पारंपरिक तरीके से बेहतर लगा।

संदर्भ

नेशनल करिकुलम प्रेमवक्र फॉर टीचर एजूकेशन 2009।

शैक्षिक तकनीकी, राष्ट्रीय फोकस समूह, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

के.सी. वशिष्ठ* और **प्रवेन्द्र सिंह बिरला****

सारांश

विद्यार्थी जीवन में सफलता तथा असफलता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बालक सफलता व असफलता को किस दृष्टि से स्वीकार करता है, यह सब उसके द्वारा निर्धारित आकांक्षा स्तर पर निर्भर करता है। बालक किसी भी लक्ष्य के लिए किये गये प्रथम प्रयास में ही अपने आकांक्षा स्तर का निर्धारण व परिवर्तन कर लेता है। सामाजिक, आर्थिक स्तर से बहुत ऊँचा आकांक्षा स्तर बनाने पर आवश्यक योग्यताओं के अभाव में जब वह असफलता प्राप्त करता है तो उसका समायोजन प्रभावित होता है। अत: शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे बालक अपनी योग्यताओं व कौशलों के अनुरूप आकांक्षाओं का निर्धारण कर सके। माध्यमिक स्तर वह स्तर होता है जिसके अंत तक बालक अपनी आकांक्षाओं को निर्धारित करते हैं तथा उसी को ध्यान में रखकर वह विषय का चयन करते हैं। विद्यालय में सही निर्देशन के अभाव में बालक अपनी सीमा के अनुरूप आकांक्षा स्तर निर्धारण में असफल होता है और हताशा का शिकार होता है। अत: शोध का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर के विज्ञान व कला वर्ग के छात्र तथा छात्राओं के आकांक्षा स्तर को ज्ञात कर उनके मध्य तुलना करना निर्धारित किया। प्रस्तुत शोध कार्य में आगरा महानगर के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से संबद्ध विद्यालयों के 120 छात्र-छात्राओं का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया। आकांक्षा स्तर को ज्ञात करने हेतु डा. महेश भार्गव एवं डा.

*प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा-282005
**शोध छात्र, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट दयालबाग आगरा-282005

एम.ए. शाह (1971) द्वारा निर्मित 'आकांक्षा स्तर मापनी' का प्रयोग किया गया। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया, अत: लैंगिक आधार पर छात्र छात्राओं के आकांक्षा स्तर में विशेष अन्तर नहीं है। विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर पाया गया अत: कहा जा सकता है कि विषय वर्ग का विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रभाव नहीं होता है।

प्रस्तावना

प्रत्येक समाज के कुछ मूल्य व मान्यताऐं होती हैं जिन्हें वह सुरक्षित रखना चाहता है और अपनी आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना चाहता है। शिक्षा ही वह साधन है जिसका प्रयोग करके समाज अपनी संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण व हस्तान्तरण करता है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है तथा संवेदनशीलता व दृष्टि को प्रखर व प्रशस्त करती है। शिक्षा हमारे मौलिक व आध्यात्मिक विकास का एक आवश्यक साधन है। यही कारण है कि मानव इतिहास के आदिकाल से ही शिक्षा अपनी पहुँच व विस्तार को निर्धारित करती रही है।

शिक्षा ही वह सीढ़ी है जिस पर चढ़कर व्यक्ति अपने आर्थिक, सामाजिक आदि स्तरों को ऊँचा बना सकता है। समाज की शक्ति का आधार भी शिक्षा है। शिक्षा मानव सिद्धान्त की प्राप्ति का एक साधन भी है। समाज में रहकर व्यक्ति जो कुछ सीखता है उसी के कारण वह स्वयं को पार्शविक प्रवृतियों से ऊँचा उठाता है। शिक्षा विद्यालय की चारदीवारी तक ही सीमित न होकर जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव से उसके भण्डार में वृद्धि होती है। कोठारी आयोग (1964-66) -''भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारे स्कूल व कॉलेज से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता कार्य की सफलता पर निर्भर करती है। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाता है।''

विद्यालय में भिन्न-भिन्न धर्म, लिंग एवं सामाजिक वर्ग के छात्र शिक्षा ग्रहण करते है। यूँ तो विद्यालयों में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी समान अवयवी दिखाई देते हैं किन्तु सूक्ष्म रूप से प्रत्येक विद्यार्थी एक दूसरे से अवयव व अनुभूति दोनों दृष्टि से सर्वथा भिन्न है और उनके आकांक्षा स्तर भी भिन्न होते हैं जो उनमें मौलिकता एवं नवीनता की भावना को जन्म देते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का आकांक्षा स्तर विशिष्ट होता है जो उसे भविष्य के लिए विभिन्न योजनाओं व उद्देश्यों के निर्धारण में सहायक होता है। प्रारम्भ में कभी-कभी वह काल्पनिक स्तर के होते हैं। लेकिन मानसिक विकास के साथ-साथ परिवर्तन करता है और धीरे-धीरे वास्तविकता के धरातल पर अपनी योजनाओं व उद्देश्यों को निरूपित करता है। उद्देश्यों के निर्धारण करने के बाद वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आकांक्षा रखता है और उन्हें प्राप्त करने के लिए कार्य करता है। प्रत्येक व्यक्ति की उद्देश्य प्राप्ति की तीव्रता अलग-अलग होती है तथा व्यक्ति को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा स्तर आधार प्रदान करती है। चूँकि आकांक्षा स्तर व्यक्ति केन्द्रित पक्ष होता है। इसलिए व्यक्ति अपनी आकांक्षा स्तरों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार तय करता है। कभी-कभी वह इतने ऊँचे आकांक्षा स्तर निर्धारित कर लेता है कि उन्हें प्राप्त करने में असफल भी हो सकता है।

किसी भी बालक के जीवन में सफलता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बालक अपनी शिक्षा किसी न किसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही प्राप्त करता है। कोई भी बालक मिलने वाली सफलता व असफलता को किस दृष्टि से स्वीकार करता है। यह सब उसके द्वारा निर्धारित आकांक्षा स्तर पर निर्भर करता है। एक ही कक्षा में पढ़ने वाले समान आयु वर्ग के बालक-बालिकाओं के आकांक्षा स्तर में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। बालक किसी भी लक्ष्य के लिए किये गये प्रथम प्रयास में ही अपने आकांक्षा स्तर का निर्धारण कर लेता है उसके आधार पर वह अपने आकांक्षा स्तर में परिवर्तन लाता है। आकांक्षा स्तर व्यक्ति के जीवन के निर्माण को प्रभावित करता है। जो बालक अपने आकांक्षा स्तर को अपनी सामाजिक आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर निर्धारित करता है। बालक की आकांक्षाओं में माता-पिता की आकांक्षाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्राय: उच्च सामाजिक आर्थिक परिवारों के बच्चे अवास्तविक उच्च स्तरीय आकांक्षाओं का निर्माण करते हैं। इसके विपरीत निम्न अथवा औसत सामाजिक स्तर के बालक भी ऊँची आकांक्षा सोचकर ऊँचा आकांक्षा स्तर निर्धारित करते हैं। इसकी झलक कक्षा में देखी जा सकती है। विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी का सामाजिक, आर्थिक स्तर भिन्न-भिन्न होता हैं। जो बालक अपने सामाजिक, आर्थिक स्तर से बहुत ऊँचा आकांक्षा स्तर बना लेते है तथा कक्षा में उसके अनुसार ही उपलब्धियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन उसके अनुरूप योग्यताओं के अभाव में वह जब असफलता प्राप्त करता है तो उससे उसका समायोजन प्रभावित होता है। अत: शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे बालक अपनी योग्यताओं व कौशलों के अनुरूप आकांक्षाओं का निर्धारण कर सके। माध्यमिक स्तर वह स्तर होता

है जिसके अंत तक बालक अपनी आकांक्षाओं को निर्धारित करते है तथा उसी को ध्यान में रखकर वह शिक्षा प्राप्त करना चाहता है तथा विषय का चयन करना है। अत: इस स्तर तक उसे अपनी योग्यताओं का ज्ञान होना अति आवश्यक है। शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक को सही दिशा में निर्धारित करना भी है। जबकि विद्यालय में सही निर्देशन के अभाव में बालक अपनी स्थिति की सीमा से ऊपर आकांक्षा स्तर बना लेता है। जिससे अच्छी प्रतिष्ठा विकसित होने का अवसर प्राप्त नहीं होता अत: माध्यमिक स्तर के छात्र छात्राओं के आकांक्षा स्तर के अध्ययन को शोधकर्ता ने अपने लघु शोध विषय में चुना है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए:

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का सामान्य अध्ययन।
2. माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।
3. माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।
4. माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य के आधार पर निम्न परिकल्पनाएँ निर्धारित की गयीं -

1. माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन हेतु न्यादर्श

प्रस्तुत शोध कार्य में आगरा महानगर के उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से सम्बद्ध विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग के 9वीं कक्षा में अध्ययनरत 120 छात्र-छात्राओं का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

माध्यमिक स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का अध्ययन करने हेतु डॉ. महेश भार्गव एवं डॉ. एम.ए. शाह द्वारा 1971 में निर्मित आकांक्षा स्तर मापनी का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन की उपलब्धियाँ

शोध अध्ययन की उपलब्धियों को उद्देश्यानुसार निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है:

1. **माध्यमिक स्तर के विद्यार्थयों के आकांक्षा स्तर का सामान्य अध्ययन**

   उपलब्धियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि न्यादर्श जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर रहा है क्योंकि आवृत्ति आरेख सामान्य प्रसम्भाव्यता वक्र के गुणों का पालन कर रहा है। प्राप्त आकड़ों की विषमता एवं कुकुदता का अध्ययन किया गया जो सामान्य प्रसम्भाव्यता वक्र के मानक मूल्यों के अनुरूप है।

2. **माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन**

   माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन क्रमश: 2.20 व 1.48 है तथा मानक विचलन क्रमश: 3.12 व 1.56 है दोनों वर्ग के मध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए क्रान्तिक मान की गणना की गई क्रान्तिक मान का मान 1.13 प्राप्त हुआ जो .05 सार्थक स्तर पर तालिका मान से कम है अर्थात् दोनों समूहों के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

3. **माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन**

   माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन क्रमश: 2.80 व 1.68 है तथा मानक विचलन क्रमश: 3.52 व 1.66 है। विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए क्रान्तिक मान की गणना की गई। गणना के बाद क्रान्तिक मान का मान 1.54 प्राप्त हुआ जो .05 सार्थक स्तर पर तालिका मान से कम है अर्थात दोनों समूहों के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

4. माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

माध्यमिक स्तर के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का मध्यमान क्रमशः 2.94 एव 2.10 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.29 एवं 2.14 है। कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य आकांक्षा स्तर के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन के लिए क्रान्तिक मान की गणना की गई। क्रान्तिक मान का मान 2.08 प्राप्त हुआ जो .05 सार्थक स्तर पर तालिका मान से अधिक है। अर्थात् .05 सार्थक स्तर पर दोनों समूहों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

शोध निष्कर्ष

उपलब्धियों के आधार पर कहा जा सकता है कि कला वर्ग के छात्र-छात्राओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है और विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं में भी कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है कहा जा सकता है कि लैंगिक भेद का आकांक्षा स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर पाया गया है। अतः कहा जा सकता है कि विषय वर्ग के अनुसार विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रभाव पड़ता है।

शर्मा, (2008) लैंगिक भेद का आकांक्षा स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु सामाजिक आर्थिक स्तर एवं विषय वर्ग का विद्यार्थियों की आकांक्षा स्तर पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। कपिल (2006) छात्र एवं छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। परन्तु शिक्षित एवं अशिक्षित पारिवारिक वातावरण का प्रभाव आकांक्षा स्तर पर पड़ता है।

अतः कहा जा सकता है प्राप्त निष्कर्ष पूर्व शोध के निष्कर्षों के साथ समानता रखता है। लैंगिक भेद का आकांक्षा स्तर पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु विषय वर्ग का आकांक्षा स्तर पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शोध अध्ययन का शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर प्राप्त उपलब्धियाँ व उनसे प्राप्त निष्कर्ष शैक्षिक दृष्टि से निम्नलिखित रूप में महत्वपूर्ण है-

1. शिक्षकों को इस बात की जानकारी देने में सहायक होंगे कि वह छात्रों को उनकी क्षमताओं, योग्यताओं को पहचानने हेतु उपयुक्त अवसर प्रदान करें जिससे वे अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपने लिए उचित लक्ष्य का निर्माण कर सकें।

2. माता-पिता द्वारा बालिकाओं को उनकी योग्यताओं को ध्यान में रखकर समय-समय पर उचित मार्ग-निर्देशन दिया जाये तथा वे छात्र जो अधिक स्वतंत्रता पसन्द करते हैं उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर निर्देशन प्रदान करना चाहिए ताकि बालक अपने पर अतिरिक्त बोझ को महसूस न कर स्वतंत्रतापूर्वक अपनी शैक्षिक क्रियाओं में संलग्न हो सके।
3. प्रधानाचार्य, प्रशासकों तथा अन्य अधिकारियों द्वारा इस बात का ध्यान रखा जाय कि पढ़ाई के साथ-साथ विद्यार्थियों को अन्य प्रकार की सुविधाएँ भी प्राप्त हों तथा पारिवारिक स्थिति व शिक्षक-छात्र संबंध को ध्यान में रखकर ही विद्यालय के क्रियाकलाप पाठ्यसहगामी क्रियाओं आदि का आयोजन किया जाय।
4. परामर्शदाता का दायित्व मात्र शैक्षिक या व्यावसायिक निर्देशन या परामर्श देना ही नहीं है बल्कि उनका दायित्व यह भी है कि वह विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में अपना योगदान प्रदान करें। इसलिए परामर्शदाता के लिए यह आवश्यक है कि वह न सिर्फ छात्रों को समय-समय पर सुझाव दे वरन् उन्हें विभिन्न परीक्षणों आदि के माध्यम से उनकी योग्यताओं से अवगत करायें।
5. विद्यार्थियों की रुचियाँ, आवश्यकताओं, आकांक्षा स्तर तथा योग्यताओं कों ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।
6. विद्यालय में अपेक्षित वातावरण उपलबध कराया जा सकता है जिससे विद्यार्थी अपने आकांक्षा स्तर को प्राप्त करने में सक्षम हो सकें।
7. विद्यालय में विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर को बढ़ाने के लिए नवीनतम् ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की जा सकती है। विद्यार्थियों को आगे बढ़ाने के लिए मार्ग निर्देशन दिया जा सकता है।
8. सभी विषयों को महत्व दिया जाये जिससे उसका अध्ययन करके अपनी क्षमताओं का तथा आकांक्षा स्तर का मूल्यांकन कर सकें।

सन्दर्भ

दीक्षित, अंशुल (2005) *प्राविधिक संस्थान में अध्ययनरत छात्राओं के आकांक्षा स्तर का सामजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन,* एम.एड. लघु शोध प्रबंध, पृ. 5-6।

वॉल्कर, केनराय (1997) *दी एस्पीरेशन फोरमेशन ऑफ डिसएडवान्टेज्ड जमेइकन मेलयूथस्,* एम.बी. बुच, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली पृ. 409।

ड्रेवर, जेम्स (1956) *ए डिक्सनरी ऑफ साइक्लोजी* न्यूयार्क: पेन्जन बुक्स लि. मिडिलसेक्स।

शर्मा प्रेमा और कौशिक नीता (2008) *ए स्टडी ऑफ लेविल ऑफ एस्पीरेशन एण्ड होम कन्डीशन्स ऑफ डिस्टेन्ट लर्नर्स इन द कॉन्टेक्स्ट ऑफ देयर सेक्स,* इंटरनेशनल डिजरटेशन एब्स्ट्रैक्ट, वाल्यूम 1,1।

मूडी फ्रैंकलिन रल्फ (2007) *फेक्टर्स अफेक्टिंग द लेविल ऑफ एसपीरेशन एण्ड एक्सपेक्टेशन ऑफ यूनीवर्सिटी स्टूडेन्ट्स इन चायना,* इंटरनेशलन डेजरटेशन एब्स्ट्रैक्ट, 68।

दीक्षित अंशुल (2005) *प्राविधिक संस्थान में अध्ययनरत् छात्राओं के आकांक्षा स्तर का सामाजिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन,* एम.एड. लघु शोध प्रबंध, पृ. सं. 5-6।

स्लायवा एण्ड मेल हुईन्स (2004) *रिलेशनशिप बिटवीन लेबिल ऑफ एसपीरेशन परफोरमेन्स, पास्ट परमोरमेन्स एण्ड फ्यूचर परफोरमेन्स,* साइकोलोजिकल एब्स्ट्रेक्ट, 93 (6)।

बेस्ट जे. डब्ल्यू. (1963) *रिसर्च इन एजुकेशन* प्रिंटस हॉल ऑफ इंडिया प्राईवेट, न्यू दिल्ली।

भार्गव महेश एवं शाह एम.एम., (1971) *आकांक्षा स्तर मापनी,* नेशनल साइकोलॉजी कॉरपोरेशन आगरा।

बुच एम.बी. (1983), '*थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*', नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 327-328।

गैरेट एच. ई. (1981), *स्टेटिसटिक्स साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन* बम्बई, वफील्प एण्ड सिमसन लिमिटेड।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए शोध अध्ययनों की उपादेयता

सुनील कुमार गौड़*

वर्तमान वैश्विक युग में शिक्षा के लक्ष्यों की संप्राप्ति हेतु विविध प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, शिक्षक, शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 आदि प्रमुख दस्तावेजों के आलोक में विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान किए जाने के लिए ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। देश की प्रगति का आधार स्तम्भ शिक्षा है, यह एक बड़ा उद्यम है। विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में शोध एवं विकास (आर. एण्ड डी.) कार्य सशक्त रूप से निरन्तर किए जाने आवश्यक हैं। विभिन्न प्रकार के शोध अध्ययनों से शिक्षा की वास्तविक स्थिति ज्ञात की जाती है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सुधारात्मक संस्तुतियाँ भी प्रस्तुत की जाती हैं। इस क्षेत्र में गुणोत्तर सुधार हेतु शोधकार्यों की गुणवत्ता अति आवश्यक है। सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि शिक्षा में बहुत से शोध कार्य किए जाते हैं परन्तु शैक्षिक संस्थानों तथा शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अभिकर्मियों द्वारा इनका भरपूर लाभ नहीं उठाया जाता। वर्तमान में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शोध कार्य किये जाने चाहिए, इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि किए गये शोध कार्यो का पूर्णतम लाभ उठाया जाय। इसके लिए शोध अध्ययन की रिपोर्ट में उल्लिखित परिणाम एवं संस्तुतियों का गहन अध्ययन किया जाना चाहिए। इसके परिणाम तथा संस्तुतियों को कार्यरूप में परिणति करने के लिए विस्तृत कार्ययोजना निर्मित की जाय। शोध कार्य के परिणाम तथा संस्तुतियों के आलोक में प्रशिक्षण आवश्यकताओं का विश्लेषण (Training Need Analysis) करके अभिमुखीकरण अथवा

*पाठ्यचर्या विभाग, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् उत्तराखंड, तपोवन, देहरादून-248008,
ई-मेलः gaursk9@gmail.com

प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता ज्ञात की जाये। तदुपरांत आवश्यकता के अनुरुप प्रशिक्षण या अभिमुखीकरण पैकेज डिजाइन करके कार्य किया जाय। अभिमुखीकरण अथवा प्रशिक्षण का कार्यस्थल पर फॉलोअप आवश्यक है। इसके साथ ही कार्य निष्पादन क्षमता, दृष्टिकोण में परिवर्तन, उद्देश्यों की संप्राप्ति में सफलता का स्तर आदि का मूल्यांकन किया जाये। यह सम्पूर्ण कार्य चरणबद्ध तथा समयबद्ध तरीके से करना होगा। इन सभी चरणों का पूर्ण नियोजन तथा प्रभावी क्रियान्वयन आवश्यक है। इस प्रकार के उपाय करके हम शैक्षिक शोध अध्ययनों का पूर्णतम लाभ (Optimum Utilization of Educational Research Studies) उठाकर आधुनिक दस्तावेजों तथा राष्ट्रीय नीतियों के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

भारत की प्रगति का आधार स्तम्भ शिक्षा है। शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे देश में शैक्षिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है तथा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा सतत प्रयास गतिमान हैं। संविधान की समवर्ती सूची का विषय होने के कारण विद्यार्थियों के शैक्षिक उन्नयन हेतु राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर से जिला स्तर तथा ग्राम स्तर तक की संस्थाएं शिक्षा के क्षेत्र में बहुमुखी कार्य कर रहीं हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक विकास हेतु 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005' शिक्षक शिक्षा के लिए 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.टी.ई.) 2009', बच्चों की नि:शुल्क और अनिवार्य 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई.) 2009' आदि दस्तावेज प्रमुख हैं। इन महत्वपूर्ण नीतियों तथा दस्तावेजों की संस्तुतियों और परिस्थितियों के आलोक में विद्यालयी शिक्षा में नवीन आयाम जुड़ रहे हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले, इसके लिए कानून तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में बदलाव, दोनों प्रकार के कार्यो का क्रियान्वयन गतिमान है। इसलिए शिक्षा एक बड़ा उद्यम है, शिक्षा के लक्ष्यों की संप्राप्ति तथा विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु शैक्षिक क्षेत्र में भी निरंतर शोध एवं विकास (आर. एण्ड डी.) कार्य किये जाते हैं।

शोध कार्य की गुणवत्ता

शोध हेतु शीर्षक के चयन से ही शोध की गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। स्पष्ट उद्देश्यों का निर्धारण, निष्पक्ष न्यादर्श चयन, आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण, शोध तकनीक में त्रुटि नहीं होना, शोध की सम्पूर्ण विवेचना तथा निष्कर्ष आदि शोध की गुणवत्ता एवं

मौलिकता के प्रमुख आयाम हैं। शोध कार्यों की गुणवत्ता से संबंधित अनेक प्रकार के प्रयास गतिमान हैं तथा बहुत से विद्वानों द्वारा इस संबंध में महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिए गए हैं। फिर भी अभी इस दिशा में और अधिक कार्य किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि शोध द्वारा सत्य की खोज की जाती है तथा यह ज्ञान के सृजन का सशक्त माध्यम भी है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में अनेक शोध हो रहे हैं परन्तु वे कम समय तक ही अस्तित्व में रह पाते हैं। उनका पूर्ण प्रचार-प्रसार भी नहीं हो पाता। शैक्षिक शोध कार्यों की गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। शोध अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि शोध कार्यों की गुणवत्ता में कमी आई है (सिंह, नरेन्द्र कुमार 2009)। शोध कार्यों की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अन्य संस्थानों द्वारा सतत प्रयास किए जा रहे हैं। कई शैक्षिक विषयों में शोध कार्य किए जाते हैं तथा उन पर चर्चा भी की जाती है परन्तु वे कम समय तक ही टिकाऊ रह पाते हैं, उदाहरणार्थ- विज्ञान में नए शोधों पर तेजी से चर्चा होती है, और फिर वे शोध तेजी से गायब भी हो जाते हैं (हिन्दुस्तान, 16 मार्च 2015)। शोध के क्षेत्र में कार्यरत अकादमिक अभिकर्मियों की क्षमता अभिवर्द्धन हेतु संबंधित प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा और अधिक प्रशिक्षण तथा कार्य किया जाना आवश्यक है।

प्राय: देखने में आता है कि शोधकर्ता द्वारा शोध रिपोर्ट में प्रस्तावना, उद्देश्य, अध्ययन की आवश्यकता, आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण आदि बिन्दुओं पर विस्तृत रूप से प्रस्तुतीकरण किया जाता है परन्तु परिणाम एवं सुझावों का उल्लेख संक्षिप्त कर दिया जाता है। जिससे अकादमिक सदस्यों को शोध अध्ययन का समुचित लाभ नहीं मिल पाता। अतएव शोध की समुचित उपादेयता हेतु परिणाम तथा सुझावों को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।

सामान्यत: लक्ष्य समूह द्वारा यह प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है कि शोध अध्ययन के परिणाम तथा संस्तुतियों की आख्या से उन्हें अवगत नहीं कराया जाता। अत: शोध अध्ययन में प्रतिदर्श हेतु जिस लक्ष्य समूह (Target Group) का उपयोग किया जाता है, यदि संभव हो तो शोध पूर्ण होने के पश्चात उसे शोध के परिणामों अथवा फीडबैक से अवगत कराया जाय, जिससे प्रतिदर्श समूह में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके।

शैक्षिक शोध की समुचित उपादेयता हेतु उपाय

प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई.) 2009 तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा में राष्ट्रीय माध्यमिक

शिक्षा अभियान (आर.एम.एस.ए.) लागू होने के पश्चात् इन क्षेत्रों में सुधार हेतु और अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इनके लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के कार्य तथा शोध किए जा रहे हैं। शोध अध्ययन करके वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया जाता है तदुपरान्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सुगममार्ग सुझाया जाता है।

शोध कार्य को करने और कराने में शोधकर्ता संस्था या व्यक्ति का धन, समय, शारीरिक एवं मानसिक श्रम व्यय होता है। इसलिए शोध कार्यों के परिणामों तथा अनुशंसाओं को लागू करने की दिशा में समुचित कदम उठाने आवश्यक हैं। प्रत्येक शोध अध्ययन का विद्यार्थियों के हित में पूर्णतम सीमा तक समुचित उपयोग (Optimum Utilization of Research) किया जाना आवश्यक हो जाता है। प्राय: देखा जाता है कि अनेक संस्थाओं एवं शोधार्थियों द्वारा किए गए शोध कार्यों का समुचित लाभ नहीं उठाया जाता।

सामान्यत: शोध अध्ययनों की रिपोर्ट पुस्तकालयों तथा रिकार्ड में रखी जाती है तथा संबंधित वेबसाइट पर ऑनलाइन कर दी जाती है। जिससे शोधार्थी तथा संबंधित अभिकर्मी ही किए गए शोध से लाभान्वित होते हैं परन्तु इन शोध कार्यों का पूर्णतम सीमा तक समुचित उपयोग नहीं हो पाता। इससे व्यय होने वाला धन तथा श्रम व्यर्थ हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में शोध की समुचित उपादेयता हेतु निम्नांकित कार्य किए जाने आवश्यक हैं–

1. शोध अध्ययन रिपोर्ट की अपनी निश्चित रूपरेखा तथा भाषा–शैली होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि शोध रिपोर्ट का सारांश आम जन की भाषा–शैली में भी लिखा जाए जिससे सामान्य पाठक उसे पढ़ने और समझने में रुचि ले सकें और संस्तुतियों को उपयोग में ला सकें।
2. अंग्रेजी माध्यम में की जाने वाली शोध अध्ययन रिपोर्ट का सारांश हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रकाशित किया जाय जिससे अध्यापक, प्रधानाचार्य तथा शिक्षा से जुड़े अभिकर्मी इसका अध्ययन करके लाभान्वित हो सकें। इसके लिए उचित होगा कि जिस संस्था या व्यक्ति ने शोध अध्ययन किया हो वही उसका भावानुवाद करके सारांश हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषा में पृथक से प्रस्तुत करे क्योंकि कभी–कभी अनुवाद करने में तथ्य परिवर्तित हो जाते हैं।
3. शोध अध्ययन की रिपोर्ट का कार्य समूह द्वारा गहन अध्ययन किया जाना आवश्यक है। यह निर्णय लिया जाना चाहिए कि शोध के परिणाम तथा संस्तुतियों के अनुसार शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए क्या–क्या कार्य किए जाने हैं।

4. किसी भी संस्थान अथवा कार्यक्षेत्र में कार्यरत मानवीय संसाधनों की कार्य निष्पादन क्षमता मुख्यत: उनकी अभिप्रेरणा, वातावरण तथा व्यवहार के स्तर पर निर्भर करती है (आरेख चित्र 1)। मानवीय संसाधनों की कार्यनिष्पादन क्षमता को यदि प्रतिशतता के आधार पर आंका जाय तो कार्यनिष्पादन क्षमता को प्रभावित करने वाले 80% वातावरणीय कारक, 12% अभिप्रेरणात्मक कारक तथा 8% व्यवहार संबंधी कारक होते हैं।

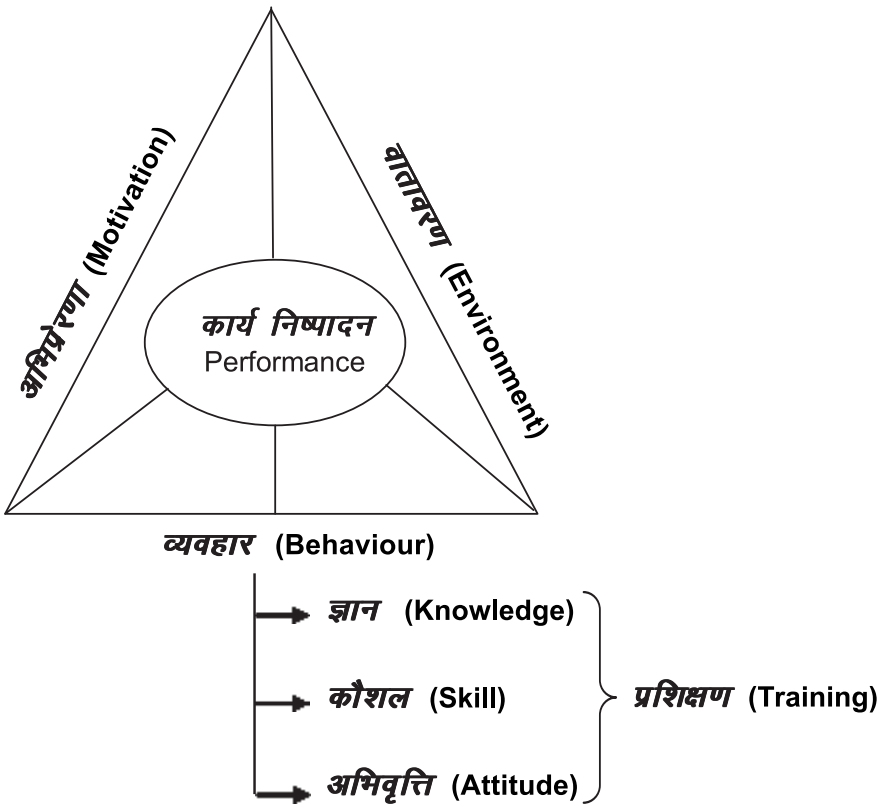

आरेख चित्र 1- कार्य निष्पादन क्षमता के विविध आयाम

मानवीय संसाधनों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है जिससे ज्ञान एवं कौशल में अभिवृद्धि होती है। ज्ञान एवं कौशल में अभिवृद्धि हेतु प्रमुख रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं।

प्रशिक्षण द्वारा मानवीय संसाधनों की अभिवृत्ति (Attitude) में मात्र 10% ही परिवर्तन लाया जा सकता है क्योंकि अभिवृत्ति मुख्यत: आनुवंशिक, पारंपरिक, वातावरणीय आदि कारकों पर निर्भर करती है। इन कारकों से व्यक्ति की अभिवृत्ति निर्मित होती है। समूह कार्य, समूह अभ्यास, अनुभव द्वारा सीखना (Experiential Learning), दैनिक जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ (Real life situations) आदि के द्वारा संस्थान के मानवीय संसाधनों की अभिवृत्ति में बदलाव आता है। अभिप्रेरणा और वातावरण निर्माण संबंधी आयामों के लिए अभिमुखीकरण कार्यक्रम और अन्य कार्य किए जाने आवश्यक हैं। यह सदैव आवश्यक नहीं है कि मात्र प्रशिक्षण के द्वारा ही मानवीय संसाधनों की कार्यनिष्पादन क्षमता में सुधार आयेगा। ऐसा भी हो सकता है कि इसके लिए अभिप्रेरणात्मक कारक अथवा वातावरण निर्माण की आवश्यकता हो। इस परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण आवश्यकता का विश्लेषण (Training Need Analysis) किया जाना आवश्यक है। प्रशिक्षण आवश्यकता का विश्लेषण करने की निश्चित रूपरेखा है जिससे यह ज्ञात किया जाता है कि क्षमता अभिवृद्धि हेतु किस क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है। यह देखा जाना चाहिए कि प्रशिक्षण आवश्यकता के विश्लेषण द्वारा क्या-क्या संस्तुतियां की गई हैं। सामान्यत: प्रशिक्षण की आवश्यकता ऐसी परिस्थितियों में होती है जहाँ मुख्यत: कौशल विकास (Skill Development) और इससे संबंधित ज्ञान का सृजन किया जाना आवश्यक हो। टी.एन.ए. की संस्तुतियों को कार्यरूप में परिणति करने के लिए विस्तृत कार्ययोजना निर्मित की जाय। शोधकर्ता को शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए प्रशिक्षण अथवा अभिमुखीकरण कार्यक्रम की संस्तुति करने के लिए ये तथ्य ध्यान में रखने आवश्यक हैं।

5. शोध के परिणामों और संस्तुतियों को लागू करने के लिए कार्ययोजना निर्मित करके कार्य किया जाय जिससे सभी को शोध अध्ययन का समुचित लाभ मिल सके।

6. कार्य करने के लिए निर्मित कार्ययोजना समयबद्ध तथा चरणबद्ध होनी चाहिए। प्रत्येक चरण को कितने समय में तथा किस प्रकार पूर्ण किया जाना है, इस प्रक्रिया का भी स्पष्ट उल्लेख किया जाना उचित होगा। कार्ययोजना को अन्तिम रूप देकर प्रशिक्षण अथवा अभिमुखीकरण आदि कार्यक्रम संचालित करके कार्ययोजना लागू की जाय।

7. निर्मित कार्ययोजना पर आधारित प्रशिक्षण अथवा अभिमुखीकरण कार्यक्रम की आवश्यकता (Need of Training or Orientation Programme) की पहचान करनी होगी। तदुपरान्त आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षण अथवा अभिमुखीकरण

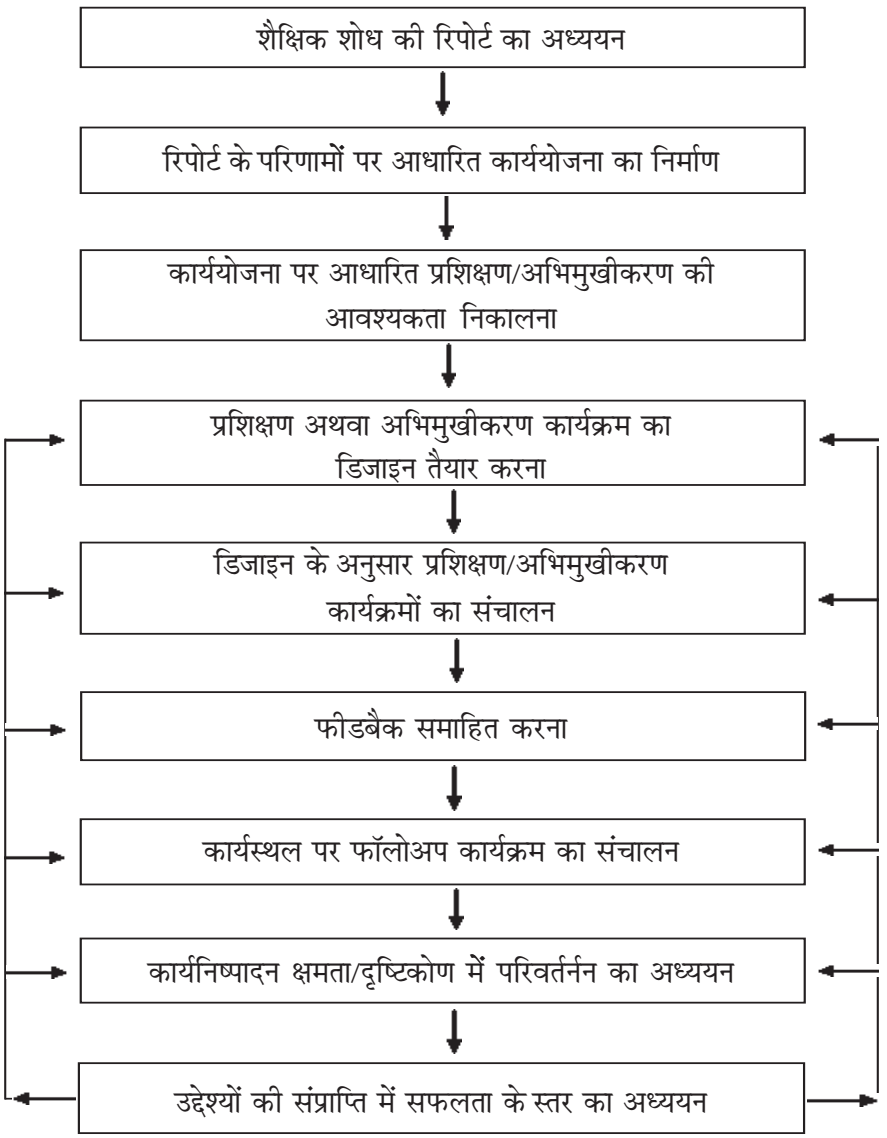

चित्र-2:
शिक्षा में गुणवत्ता विकास हेतु शोध अध्ययनों की उपादेयता के लिए कार्यक्रम आरेख

कार्यक्रम का डिजाइन तैयार करना होगा। तत्पश्चात प्रशिक्षण/अभिमुखीकरण कार्यक्रम का भलीभांति संचालन करके एवं फीडबैक को समाहित करते हुए डिज़ाइन को और अधिक प्रखर बनाना होगा। प्रशिक्षण अथवा अभिमुखीकरण कार्यक्रम का कार्यस्थल पर फॉलोअप कार्यक्रम संचालित किया जाना भी आवश्यक है। इसके पश्चात् कार्यनिष्पादन क्षमता, दृष्टिकोण में परिवर्तन, उद्देश्यों की संप्राप्ति में सफलता का स्तर आदि तथ्यों का आकलन एवं अध्ययन किया जाना चाहिए। इस कार्ययोजना निर्माण की प्रकिया को उपरोक्त आरेख चित्र 2 के माध्यम से भलीभांति समझा जा सकता है।

8. शोध अध्ययन के परिणामों और संस्तुतियों के आधार पर गैर-प्रशिक्षण योग्य मुद्दों (Non-Training Issues) की पहचान करके तद्नुसार कार्य किए जाने की भी आवश्यकता है।

ऐसे उपाय करके हम शैक्षिक शोध अध्ययनों का समुचित लाभ उठाकर आधुनिक दस्तावेजों तथा राष्ट्रीय नीतियों के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

बच्चों की नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, भारत का राजपत्र, 27 अगस्त 2009, संख्या 35, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.-टी.ई.) 2009, एन.सी.टी. ई. नई दिल्ली।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन हेतु रूपरेखा 2009, एम.एच.आर.डी. नई दिल्ली।

सिंह, नरेन्द्र कुमार (2009) *शिक्षा में शोध अध्ययनों की गुणवत्ता का आलोचनात्मक अध्ययन,* परिप्रेक्ष्य 16 (3) 91-102

दैनिक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' 16 मार्च 2015, *शोध में क्षरण,* पृष्ठ 10.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

हिंदी लोक साहित्य में मानव-मूल्य और शिक्षा

विभा सिंह पटेल*

सारांश

हिन्दी लोक साहित्य सम्पूर्णत: मानव मूल्यों का साहित्य है। वर्तमान समय में, इस मनोवैज्ञानिक युग में मनुष्य भौतिक रूप से विकास के पथ पर अग्रसर है लेकिन इसी का दूसरा पक्ष आध्यात्म, जो हमारे देश की विशेषता है, वो पिछड़ती चली जा रही है। भौतिकता और आध्यात्मिकता में तादात्म स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है क्योंकि मानव द्वारा विकसित इस मनोवैज्ञानिक युग में विज्ञान का सही तथा सकारात्मक उपयोग के लिए मूल्यों की शिक्षा अति आवश्यक है। अत: लोक साहित्य के माध्यम से मानव मूल्यों की शिक्षा प्रभावशाली तरीके से मिलती है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जो जनसाधारण से जुड़ा हुआ है तथा ऐसा साहित्य जिससे हम भावनात्मक स्तर पर जुड़ जाते हैं या जो हमारी भावना से जुड़ जाता है, यह मानव-स्वभाव है कि उसे हम अनायास ही ग्रहण कर लेते हैं क्योंकि ऐसे मानव मूल्य हमें सुखद अनुभूति प्रदान करते हैं। मनुष्य जहाँ एक तरफ भौतिक सुख-साधना में लीन है वही दूसरी ओर मानसिक अवसाद, कुण्ठा, अशान्ति, तथा असुरक्षा महसूस कर रहा है। भौतिक रूप से संतुष्ट होते हुए भी मनुष्य मानसिक अशान्ति के साथ जीवनयापन कर रहा है। मनुष्य की इन्हीं समस्याओं से निजात दिलाने तथा उसमें भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से संतुलन स्थापित करने के लिए मानव मूल्यों की शिक्षा अति आवश्यक है। मानव मूल्यों की ये शिक्षा हिन्दी लोक साहित्य में उपलब्ध है तथा इसके माध्यम से सरलता, सहजता तथा स्थाई रूप से मानव मूल्य की शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इस प्रकार हिन्दी लोक साहित्य मानव मूल्यों के लिए अप्रतिम संदर्भ श्रोत है।

हिन्दी लोक साहित्य मानव-मूल्यों का साहित्य है। साहित्य शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। दार्शनिक शब्दावली में एक क्रिया के

*शोधछात्र, शिक्षा संकाय, कमच्छा काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ई-मेल : vibha.box@gmail.com

साथ योग रहने को ही साहित्य कहा गया है। पश्चिमी समालोचकों ने भाषा के माध्यम से जीवनाभिव्यक्ति को ही साहित्य माना है। हिन्दी लोक साहित्य मानव-मूल्यों की अभिव्यक्ति है तथा इसके साथ-साथ गैर-मूल्यों की अभिव्यक्ति भी है लेकिन हमारे लोक साहित्य में गैर मूल्यों की तुलना में हमारे मानव-मूल्यों के पलड़े को हमेशा भारी दिखाया गया है, जैसा कि हमारी भारतीय परंपरा में पहले से यह मौजूद रहा है। हम सभी जानते हैं कि हमारा देश आध्यात्म प्रधान रहा है। तथा हमारे देश में मानव-मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता रहा है। इसके साथ-ही-साथ आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष करने, दु:ख सहने के लिए तत्पर रहा है।

साहित्य मानव-मूल्यों की अभिव्यक्ति उस परिस्थिति में करता है, जब एक साहित्यकार अपने चेतन अनुभूति की सघनता तथा चिन्तन की गहनता के समन्वित आधार पर स्वरूप ग्रहण करता है। अनुभूति का संबंध मनुष्य के हृदय पक्ष से तथा चिन्तन का उसके बुद्धि पक्ष से होता है। इसी सन्दर्भ में हिन्दी साहित्येतिहास के प्रमुख आलोचक ने कहा है कि,'' यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।''(शुक्ल, पृ. 15) मानव-मूल्यों का संबंध हमारे इसी 'भावाकर्षक' हृदय स्थल से है जो हमसे भावनात्मक स्तर पर जुड़ा होता है।

भाषा के साहित्य की एक परम्परा होती है और इसके साथ-ही-साथ किसी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि उसे शिक्षा, शासन और साहित्य में मान्यता प्राप्त होती है। भाषा के अर्थ को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए हम भाषा और बोली में अन्तर देख सकते हैं। अगर दो क्षेत्रों के अशिक्षित और अप्रभावशाली व्यक्ति एक-दूसरे की वाणी को नहीं समझ सकते तो उनकी वाणी की दो भाषाएँ हैं, जैसे- बंगाली और पंजाबी; या अंग्रेजी और फारसी; और यदि वे एक-दूसरे को समझ और समझा सकते हैं तो उनकी दो बोलियाँ हैं, जैसे– भोजपुरी और अवधी। साहित्य बोलियों में भी लिखा जा सकता है लेकिन उसकी कोई लिखित साहित्य की लम्बी परम्परा नहीं होती है, जैसे– भोजपुरी साहित्य की परम्परा समृद्ध है। भाषा रेडियो, समाचारपत्र, डाक और तार, राष्ट्रीय सेना और न्यायालयों का माध्यम भाषा होती है। भाषा का रूप विस्तृत होता है तथा बोली का प्रयोग सीमित होता है। भाषा पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में आकर व्याकरणबद्ध हो जाती है।

अगर उपर्युक्त कसौटियों पर कस कर देखा जाय तो हिन्दी को भाषा होने का स्थान सुनिश्चित हैं। हम हिन्दी भाषा को कई रूपों में व्यवहृत करते हैं:

हिन्दी राजभाषा के रूप में– राजकाज चलाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उसे देश की राजभाषा होने का दर्जा प्राप्त होता है। प्राचीन काल में संस्कृत, पालि, महाराष्ट्र, प्राकृत अथवा अपभ्रंश राजभाषा रही है। ''स्वतन्त्रता के बाद राजसत्ता जनता के हाथ में आई। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक हो गया कि देश का राज-काज, लोक की भाषा में हो; अत: राजभाषा के रूप में हिन्दी को एकमत से स्वीकार किया गया।''(बाहरी, पृ. 138) इस प्रकार 14 सितम्बर 1949 ई. को भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा, जो भारत की अधिकांश लोगों की लोकभाषा है, को मान्यता प्रदान की गई।

हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में– हिन्दी भाषा जो थोड़ी-बहुत पूरे देश में बोली, समझी और व्यवहृत की जाती है, अपने इन्हीं गुणों के कारण हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया है। ''किसी देश की राजभाषा भले ही कोई हो, परन्तु उसकी राष्ट्रभाषा अपनी ही होनी चाहिए।''(बाहरी, पृ. 152) हिन्दी भाषा, देश के बहुसंख्यक लोगों द्वारा प्रयोग में लायी जाती है, इसका शब्द-भंडार विस्तृत और संवृद्ध होने के साथ-साथ इसमें उच्चकोटि के साहित्य की रचना हुई है। इसका व्याकरण सरल, नियमबद्ध, सुस्पष्ट एंव वैज्ञानिक है, जिसे सरलतापूर्वक सीखा जा सकता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त है।

राष्ट्रभाषा हमारी राष्ट्रीय एकता तथा भावात्मक एकता का प्रतीक है। राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में, ''हिन्दी तोड़नेवाली भाषा नहीं, जोड़नेवाली भाषा है। हिन्दीभाषी प्रान्तों में अनेक जनपदीय भाषाएँ हैं, किन्तु उनसे एकाकार होकर हिन्दी ने सभी हिन्दी भाषी प्रान्तों को एक सूत्र में बाध रखा है।''

हिन्दी मातृभाषा के रूप में– ऐसी भाषा जिस भाषा में स्वाभाविकता एवं सहजता से हम अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। इस प्रकार हिन्दी देश के अधिकांश लोगों की मातृभाषा होने के नाते उनकी निजी भाषा है। कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।

हिन्दी अधिकांश जन की लोकभाषा– ऐसी भाषा जो सामान्य जन के द्वारा व्यवहृत की जाती हो तथा व्यापक रूप में अपनी सरलता और सहजता को अपने में समेटे हुए आम लोगों की भाषा होने का गौरव प्राप्त करती है, उसे लोकभाषा कहते हैं। इस आधार पर देखा जाय तो हिन्दी अधिकांश जन की लोकभाषा है।

भाषा अपने इसी रूप में सुरक्षित तथा संरक्षित होती है और हिन्दी भाषा को ये सुरक्षा तथा संरक्षण अधिकांश लोगों से प्राप्त है। इसी कारण हिन्दी भाषा को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और मातृभाषा होने का गौरव प्राप्त है क्योंकि अशिक्षित आम जनता के द्वारा हिन्दी भाषा आसानी से व्यवहृत होती है और अपने इसी रूप में अर्थात लोकभाषा के रूप में हिन्दी भाषा के साहित्य की परम्परा सुरक्षित है। ''भाषा, साहित्य और संस्कृति के अंतरसम्पर्क में हिन्दी क्षेत्र और वहाँ के जन-समुदाय की संवेदना कैसे विकसित होती गई है, और साहित्य उसे किस रूप में प्रतिफलित करता है, यह इस समूचे अध्ययन की अंतर्वस्तु है।''(चतुर्वेदी, पृ. 9) हिन्दी भाषा को जीवित रखने वालों में शिक्षित व्यक्तियों से ज्यादा साधारण, अशिक्षित और आम जनों का सहयोग ज्यादा है, ये हिन्दी भाषा का प्रयोग अपने रहन-सहन, व्यवहारिक जीवन में पूर्णत: करते हैं, जिससे हिन्दी भाषा सुरक्षित है।

लोक साहित्य– लोक साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो सामान्य जन की भाषा में लिखा गया तथा जिसमें सामान्य मनुष्य के जीवन की संवेदना जगाने वाले तथा हृदयस्पर्शी चित्रों को उकेरा गया हो। लोक साहित्य, साहित्य को आम जनता के सामान्य धरातल पर ला देता है जिससे एक बड़े स्तर पर जनसामान्य अपना जुड़ाव महसूस करते हैं। इस संबंध में डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने लिखा है-''लोक साहित्य लोक-मानस की सहज अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्राय: अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता-सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुलमिल कर ही कहता है।''(हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोकतत्व, पृ. 5)

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि, ''ऐसा माना जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक-साहित्य, लोक-शिल्प, लोक-नाट्य, लोक-कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है।''(विचार और विर्तक, पृ. 206)

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार, 'सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उनकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, लाभ-हानि, सुख-दुख: आदि की अभिव्यक्ति जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है, जो जनता द्वारा, जनता के लिए लिखा गया हो।' (लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 24)

'हिन्दी साहित्य कोश' में लिखा गयाा है कि, ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता है, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।'' (भाग-1, पृ. 753)

इस प्रकार लोक साहित्य सामान्य लोगों की अनुभूतियों, भावनाओं, विचारों आदि की सहज अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य में निम्नलिखित बिन्दुओं का समावेश होता है-

1. लोक जीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है।
2. मानव सभ्यता और संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।
3. मानव हृदय के स्वत: स्फूर्त उद्‌गार।
4. अनादिकाल से मानव की सामूहिक भावनाओं की सहजाभिव्यक्ति है।
5. व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी समूह की रचना होती है।
6. जन मनोरंजन के साथ-साथ कर्म की प्रेरणा देती है।
8. प्रेम, मानव-जीवन का अभिन्न पुट।
9. लोक को एक स्वस्थ मनोरंजन की सामग्री प्रदान करना।
10. मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से सर्वदा सामंजस्य स्थापित करना।
11. लोक मंगल की भावना।

हिन्दी लोक साहित्य- हिन्दी लोक साहित्य में ऐसे साहित्य शामिल हैं जो हिन्दी भाषा तथा बोलियों में लिखा गया है। इसमें प्राकृत, अवहठ्ठ, अपभ्रंश, अवधी, मागधी, ब्रजभाषा, शौरसेनी, खड़ी बोली आदि बोलियों में लिखा गया साहित्य है जो हिन्दी लोक साहित्य में

शामिल हैं। लोक साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं में से कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

आल्हा: पूर्वी उत्तर प्रदेश में भोजपूरी भाषा की वीर रस प्रधान लोक गाथा 'आल्हा' सार्वधिक लोकप्रिय काव्य है। यद्यपि यह भोजपुरी भाषा की लोकगाथा नहीं है, तथापि यहाँ के लोकजीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

लोरिकी (लोरिकायन): लोरिकायन को एक समृद्ध लोक–महाकाव्य की ख्याति प्राप्त है।

बिरहा: उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों एवं बिहार के पश्चिमी जिलों में बिरहा लोकगीत अत्यधिक प्रचलित है।

विजयमल: 'विजयमल' भोजपुरी वीरगाथात्मक लोकगीतों में प्रमुख स्थान रखती है। इसका दूसरा नाम 'कुंवर बिजई' भी है।

बाबू कुँवर सिंह: बाबू कुँवर सिंह के जीवन वृत्त एवं शौर्य पर भोजपुरी में एक लोकगाथा प्रचलित है, जिसे 'बाबू कुँवर सिंह' के नाम से जाना जाता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में यह सर्वाधिक अर्वाचीन है।

बिहुला: बिहुला लोकगाथा पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, एवं बंगाल में अत्यधिक लोकप्रिय है। इस लोकगाथा का सम्बन्ध मनसा देवी (सर्पों की देवी) की पूजा से है। बंगाल में 'मनसा पूजा' का प्रचलन अधिक है।

परिकथा: भारत में परिकथाएँ सर्वाधिक संख्या में प्रचलित है। ये परियाँ हमारे देश में परियों, अप्सराओं, एवं अलौकिक शक्तियों से युक्त व्यक्तियों से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं, जो लोकमानस में समायी हुई है।

बीजक: कबीर का साहित्य जिसे बाद में लिखित रूप में, उनके वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से जाना जाता है। कबीर अपने काव्य में लोक बोली के शब्दों का प्रयोग प्रचुरता में तथा उत्साह के साथ किया करते थे। उनकी रचनाएँ लोक में आज भी व्याप्त हैं तथा गाई जाती हैं। इतने समय बाद भी कबीर की रचनाओं को जीवित रखने में सामान्यजन का हाथ है जो साहित्य में व्याप्त होने के कारण सुरक्षित है। इसिलिए, ''बोली के ठेठ शब्दों के प्रयोग के कारण ही कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा जाता है।'' (त्रिपाठी, पृ. 21)

इस प्रकार हिन्दी लोक साहित्य की परम्परा में एक दीर्घकालीन तथा विकसित परम्परा के रूप में स्थान रखती है। प्रारंभ में लौकिक साहित्य की परम्परा मौखिक रूप में

श्रुति के आधार पर सुरक्षित रहती थी तथा बाद में धीरे-धीरे विकास के पथ पर अग्रसर होने के कारण इसे श्रुति परम्परा के साथ-साथ लिपिबद्ध किया जाने लगा।

मूल्यः 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'मूल' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका शब्दिक अर्थ है- जो मूल में हो, उखाड़ने योग्य, प्रतिष्ठा के योग्य, किसी वस्तु के विनिमय में दिए जाने वाला धन, कीमत, दाम या बाजार का भाव। शब्दकोश के अनुसार इसके अन्य अर्थ हैं- वेतन, पारिश्रमिक, उपयोगिता, रचना के भीतर रहने वाला ऐसा उद्देश्य, जो उसे किसी सामाजिक आदर्श, व्यक्तिगत उच्चता आदि से जोड़े। 'मूल्य' शब्द का अगला पर्याय वैल्यू है, जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'वैलोरा' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है- अच्छा, सुन्दर, उत्तम, उपयोगी, समर्थ या शक्तिशाली।

''जो मानवीय इच्छा की तुष्टि करे, वही मूल्य है।...मूल्य वह वस्तु है, जो जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाती है।...वही वस्तु अंतिम रूप से तथा स्वलक्ष्य दृष्टि से मूल्यवान है, जो व्यक्तियों को विकास अथवा आत्म-विकास या आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।''(अर्बन, पृ. 16-18)

''मूल्य वास्तव में जन्मजात होतें हैं, यद्यपि विज्ञान इसे देख नहीं सकता।''(हार्टमैन, वैल्यूम,19) ''वास्तव में थोड़े से सिद्धान्त है, जो मनुष्य बनाते हैं हम उन्हीं को जीवनमूल्य कहते हैं।''(वर्मा, पृ. 36) ''मानव के सन्दर्भ में मूल्य का अर्थ एक ऐसी धारणा या दृष्टि होती है, जो मूलतः व्यक्ति के जीवन में पनती है, किन्तु जिसका विकास समाज की ओर होता है, जो समाज में आचरण, व्यवहार संबंधी मान्यताओं, विश्वासों और अभिलाषाओं को झेलती है, उनका मानदण्ड बनाती है।''(वार्ष्णेय, पृ. 431)

प्रमुख मानव मूल्यः भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने मूल्य का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में पुरुष चतुष्ट्य का प्रमुख स्थान है और मूल्यों के भी ये ही चार वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माने गए हैं। धर्म, दया, परोपकार, अहिंसा, क्षमा, नीति, न्याय, सदाचार, शालीनता इत्यादि सात्विक मूल्यों का पुंज है। अर्थ के द्वारा व्यक्ति एवं समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, अतएव इसे समष्टि मूल्य स्वीकार किया जा सकता है। जीवन में शारीरिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध काम को व्यक्तिगत मूल्य स्वीकार किया जा सकता है। मोक्ष आध्यात्मिक मूल्य है और इसे सर्वोपरि मूल्य स्वीकार किया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों में अर्बन महोदय ने व्यापक आधार पर मूल्य के आठ प्रकार निश्चित किए- 1. शारीरिक मूल्य, 2. आर्थिक मूल्य, 3. मनोरंजनात्मक मूल्य,

4. सामाजिक मूल्य, 5. चरित्र एवं सौंदर्यात्मक मूल्य, 6. बौद्धिक और 7. धार्मिक एवं 8. ईश्वरविषयक मूल्य। प्रस्तुत वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से स्वीकार्य नहीं है, यथा सर्वप्रथम इन्होंने शारीरिक मूल्यों को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार मनोरंजनात्मक मूल्य सौंदर्यात्मक भी हो सकते हैं, बौद्धिक मूल्यों एवं धार्मिक मूल्यों में भी कोई विभाजन रेखा हो यह अनिवार्य नहीं है। विलियम लिली के अनुसार मूल्य दो प्रकार के हैं- यांत्रिक मूल्य एवं निरपेक्ष मूल्य। डा. मैनी ने बड़ी सूक्ष्म-दृष्टि से मूल्यों का व्यापक वर्गीकरण किया है, जो अवश्य ही विचारणीय है। उन्होंने प्राकृतिक, विस्तारात्मक, 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्', परक विकासात्मक तथा यथार्थपरक इन पाँच आधारों पर मूल्यों का वर्गीकरण किया है।

मूल्य एवं मानव मूल्यः मूल्यों का संबंध मानव के साथ चिरंतन रहा है। मानवीय इच्छाओं, आदर्शों एवं भावनाओं की ही परिणति मूल्य के रूप में होती है। मानव ही मूल्यों का प्रेरक और स्रष्टा है। मूल्य ही मानव को अन्य जीवों से पृथक् करता है। मानव के बिना मूल्यों का अस्तित्व नहीं है। चाहे सामाजिक मूल्य हों, राजनीतिक मूल्य हों या सांस्कृतिक मूल्य- सभी का केन्द्र बिंदु है- मानव। हेनरी आसबार्न ने सम्पूर्ण मानव प्रकृति में संगति का विधान करने वाली विशिष्टताओं को मानव मूल्य स्वीकार किया है। अंततः डॉ. धर्मवीर भारती के शब्दों में कहा जा सकता है-''मानवीय मूल्य विराट मानव जीवन की अगणित शिराओं में संचारित होता रहता है।''

मूल्य एवं साहित्यः साहित्य, साहित्यकार के जीवन अनुभवों का दर्पण है। साहित्य में सत्य, शिव और सुन्दर की अभिव्यक्ति होती है। 'मूल्य' शब्द भी केवल सामाजिक कल्याण या लोक हित के व्यापक अर्थ तक ही सीमित नहीं है, उसमें लोक कल्याण की भावना के साथ-साथ सत्य और सुन्दर को भी समाहित कर लिया गया है। डॉ. जगदीश गुप्त का कथन है- ''साहित्य में वही मानव मूल्य प्रतिबिम्बित एवं समाविष्ट हो पाते हैं जिनको साहित्यकार ने अपने अंतःकरण में धारण किया है और जो उसके संवेदनशील व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन चुकें हैं। ऐसे मानव मूल्य साहित्य और कला में संश्लिष्ट होकर व्यक्त होते हैं तथा आरोपित प्रतीत नहीं होते हैं।''

लोक चेतना एवं मानव मूल्यः किसी भी साहित्य का मूल उद्देश्य मानव के हृदय पक्ष को प्रभावित कर आह्लादित करना, परन्तु वह अपने समाज, लोकजन, देश के प्रति सदा जागरूक रहता है। किसी भी लोक साहित्य की जागरूकता ही उसे कालजयी रचना का रूप देती है और सामान्यजन की यही ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, जो उसे साहित्य से मिलती

है, लोक चेतना कहलाती है। जिस लोक साहित्य में देश तथा समाज के हित की अपेक्षा की जाती है वह साहित्य ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह सकता। इस दृष्टिकोण से जब हम हिन्दी लोक साहित्य का अध्ययन करते हैं तो उसमें लोक चेतना के स्वर सुनाई देते हैं। भारत एक विशाल देश है और इसमें अनेक लोक भाषाएँ बोली जाती हैं तथा प्रत्येक बोली का अपना-अपना लोक साहित्य है। इसी तरह हिन्दी लोक साहित्य के संबंध में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का विचार देखा जा सकता है-''भले ही आकाश के खण्ड हो सकें, किन्तु भारतीय स्त्री का हृदय जिन आदर्शों एवं भावनाओं से प्रतिपादित है, उनका बँटवारा नहीं हो सकता। भारतीय स्त्री ही अधिकांश लोकगीतों की कवयित्री ऋषिका है। उस मंगलयानी गँवारिन के सुरीले कण्ठ की अमृत-ध्वनि गीतों के रूप में मूर्त है। इस मंगलमयी गीतकारिणी की भाषा के अनेक रूप हैं, किन्तु उनमें छिपे हुए अर्थों का रूप एक है।''(अग्रवाल, पृ. 3)

लोक साहित्य में अनुश्रवण एवं अनुशीलन की प्रासंगिकता : लोक साहित्य अर्थात् लौकिक साहित्य की परम्परा काफी प्राचीन है। उस समय संस्कृत साहित्य को दो मोटे विभागों (1) वैदिक और (2) लौकिक साहित्य में बाँटा गया था। ''नाना उत्थान-पतनों के आवर्त्त में भारतवर्ष का बहुत कुछ खो गया, बहुत कुछ नया प्राप्त हुआ था। उस समूचे का परिचायक साहित्य ही लौकिक संस्कृत का साहित्य है।''(द्विवेदी, पृ. 87) लौकिक संस्कृत के साहित्य की एक प्राचीन और लम्बी परम्परा है तथा हिन्दी लोक साहित्य की परम्परा संस्कृत में से निकलती हुई नवीनता लिए हुए एक दीर्घकालीन परम्परा है। लोक साहित्य में अनुश्रवण के विकास के साथ ही साथ अनुशीलन का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी लोक साहित्य की रचना करते समय उस पर उस समय तथा उससे पहले के अनुश्रवण का प्रभाव कहीं न कहीं पड़ता ही है तथा इसके साथ ही साथ साहित्य की रचना करने में अनुशीलन को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि किसी भी रचनाकार के जीवन में साहित्य रचना में अनुशीलन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हिन्दी लोक साहित्य ऐसे विषयों में से एक है जिसके माध्यम से लोगों में मानव मूल्यों का विकास उनके भावनात्मक स्तर से जोड़ कर स्थाई रूप से किया जा सकता है। हम सभी जानते हैं कि 'साहित्य समाज का दर्पण होता है।' इसके साथ ही साथ आचार्य रामचन्द शुक्ल ने लिखा है, ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।''(शुक्ल, पृ. 15) इस प्रकार हम संबंधित काल के समाज को साहित्य के माध्यम से देख, समझ और जी सकते हैं। वर्तमान समाज की बात करते हुए

ही हमारे आँखों के सामने एक भयावह समाज का चित्र प्रस्तुत हो जाता है जिसमें भ्रष्टाचार, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, अनैतिकता, धर्मान्धता, आतंकवाद तेजी से बढ़ते हुए दिखते हैं लेकिन इसी समाज में एक ऐसा भी समाज बचा हुआ है जहाँ पर हम दया, करुणा, प्रेम, सहयोग, परोपकार, नैतिकता आदि भावनाओं को देख सकते हैं। जो मानवीय मूल्यों का परिणाम है और ऐसा समाज हमारा लोक समाज, सामान्य जन का समाज है जिसे हम हिन्दी लोक साहित्य रूपी दर्पण में देख सकते हैं तथा उसके अध्ययन से लाभान्वित भी होते हैं क्योंकि ऐसा साहित्य हमसे भावनात्मक स्तर पर जुड़ जाता है और जो चीज़े हमारी भावना से जुड़ जाती है यह मानव स्वभाव है कि हम उसे अनायास ही ग्रहण कर लेते हैं क्योंकि ऐसे मानवीय मूल्य हमें सुखद अनुभूति प्रदान करते हैं। श्री नेमिचंद्र जैन के अनुसार, ''साहित्य की दृष्टि ही अपने आप में एक मूल्य है। मानव मूल्य ही साहित्य में प्रतिपादित होते हैं। अतः साहित्यिक मूल्य जीवन मूल्यों से भिन्न या उनसे ऊपर नहीं हो सकते।'' इस प्रकार हिन्दी लोक साहित्य में सम्पूर्णतः मानव मूल्य विद्यमान हैं।

संदर्भ

चतुर्वेदी, रामस्वरूप (2010) *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोक भारती प्रकाशन, इण्डियन प्रेस प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद।

बाहरी, हरदेव (2010) *हिन्दी भाषा,* अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद।

शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र (1997) *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* कमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र (2009) *चिन्तामणि,* लोक भारती प्रकाशन, इण्डियन प्रेस प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2006) *अशोक के फूल,* लोक भारती प्रकाशन, इण्डियन प्रेस प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद।

मैनी, धर्मपाल, *मानवमूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोश,* खण्ड चतुर्थ, स्वरूप एण्ड सन्ज़, नई दिल्ली।

यादव, द्विजराम (1993) *लोक साहित्य,* शिल्पी प्रकाशन, इलाहाबाद।

त्रिपाठी, विश्वनाथ (2007) *हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास,* ओरियंट लाँगमैन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 22, अंक 3, दिसंबर 2015

चिंतक और चिंतन

महात्मा गाँधी की दृष्टि में महिलाओं की शिक्षा

रश्मि श्रीवास्तव*

आज शिक्षा के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित कर रही महिलाओं को देख कर लगता यही है मानो भारत में ऐसा सदैव से था। हमारे घरों की बच्चियां पीठ पर भारी बस्ते लादकर अपने भाईयों के साथ बराबरी के हक से स्कूलों को जाती रही हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि स्थितियां सदैव ऐसी थी नहीं। भारत में हमारे घरों की बच्चियों और महिलाओं को इस स्तर तक लाने में हमारे देश के समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों व शिक्षाविदों ने एक लम्बा संघर्ष किया है। वास्तविकता यह है कि सदियों तक घर की चारदीवारी मे बंद देश की महिलाओं ने नवीन चुनौतियों को स्वीकार कर घरों से बाहर निकलने, समाज की मुख्य धारा से जुड़ने हेतु लम्बा संघर्ष किया है। इस संघर्ष में तमाम विशिष्टजनों के साथ महात्मा गाँधी की अपनी एक विशेष भूमिका रही है।

गाँधी अपने बाल्यकाल में ही लड़के-लड़कियों की शिक्षा में किये जाने वाले भेद को शायद स्वीकार नहीं कर सके थे, क्योंकि अपनी पत्नी कस्तूरबा बाई के अक्षर ज्ञान के प्रति वे सचेत रहे। उनकी पोती सुमित्रा गाँधी कुलकर्णी उल्लेख करती है। ''मोहन चाहते थे कि उसकी पत्नी उसकी आज्ञा के बिना घर के बाहर पाँव तक ना रखे और रोज रात को बैठ कर पढ़ना लिखना सीखें।'' अवश्य ही यह उनका स्त्री शिक्षा के प्रति प्रारम्भिक अनुराग था। कुलकर्णी लिखती है। ''दिन भर घर का काम करने के बाद टिमटिमाती मोमबत्ती की रोशनी मे वर्णाक्षर सीखना कस्तूरबा को असाध्य और बेकार लगता था, लेकिन उत्साही पति अपनी पत्नी को पढ़ा-लिखा कर पारंगत बनाने पर तुला था।'' आगे चलकर महात्मा गाँधी कस्तूरबा बाई ही नहीं देश के एक बड़े महिला वर्ग का समर्थन अपने कार्यों में हासिल कर सके और इस समर्थन के साथ वह उनके लिए जीवन की नयी दिशाएँ भी खोल सके।

---

*सहायक प्रोफेसर (बी.एड.) महिला विद्यालय डिग्री कालेज, लखनऊ

भारतीय समाज में स्त्रियों के साथ हो रहे भेदभाव व अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हुए उन्होने कहा था। 'कानून की रचना ज्यादातर पुरुषों के द्वारा हुई है। और इस काम को करनें में, जिसे करने का जिम्मा मनुष्य ने अपने ऊपर खुद ही उठा लिया है, उसने हमेशा न्याय और विवेक का पालन नही किया है। स्त्रियों में नये जीवन का संचार करने के हमारे प्रयत्न का अधिकांश भाग उन दुर्गुणों को दूर करने मे खर्च होना चाहिए, जिनका हमारे शास्त्रों ने स्त्रियों के जन्मजात और अनिवार्य लक्षण कह कर वर्णन किया है।'

गांधी जी का यह स्पष्ट मानना था कि महिलाओं पर लगाए गये प्रतिबंध व उनके साथ सदियों से हुये अन्याय में पुरुष वर्ग का स्वार्थ निहित है। उन्होने कहा था– ''स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नही कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नही लगाया जाना चाहिए, जो पुरुषों पर ना लगाया गया हो। पुत्रों और पुत्रियों के साथ किसी तरह का भेद नही होना चाहिए उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिए।'' गाँधी जी के इसी उदार दृष्टिकोण के कारण महिलाएँ उनके आन्दोलन में जुड़ी। बहुतेरे राष्ट्रवादी हिन्दू, नारियों को कैसी हीन दृष्टि से देखते हैं। इसके बारे में अभियोग उपस्थित करते हुए बहुत-सी महिलाओं ने उन्हें पत्र लिखे। उन्होंने वे सब पत्र प्रकाशित कर दिये और पत्र-पत्रिकाओं के अभियोग को सच माना। उन्होंने कहा अस्पृश्यता के समान ही भारत के शरीर का यह भी एक भयानक घाव है, यद्धपि इस घाव की पीड़ा केवल भारत ही नही, सारा संसार भोग रहा है। यह समस्या सारे संसार की है। यहां भी वे उन्नति का विकास उन्ही की जागृति से करते हैं, जिन पर अत्याचार हुआ है, जो अत्याचार करते हैं, उनके जागरण से नहीं, इसी से वे नारियों के पास ही जाते हैं, कहते हैं, पुरुषों की भूख मिटाने का साधन न बनी रह कर अब वे स्वयं ही अपना सम्मान प्रकट करें। देश के काम में वे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें, साहस के साथ विपत्तियों का सामना करें, जिम्मेदारियां लें।''

महिलाओं की अशिक्षा और उनकी दयनीय स्थिति का कारण पारम्परिक अवधारणा को स्वीकार करते हुए उन्होने महिलाओं के प्रति सदियो से हो रहे अन्याय की ओर ध्यान आकर्षित किया। उनका मानना था कि स्त्रियों में जो निरक्षरता पाई जाती है, उसका कारण पुरुषों की तरह निराआलस्य और जड़ता नही है। अधिक प्रबल कारण वह नीचा दर्जा है जो दूर अतीत में चली आयी परम्परा ने अन्यायपूर्वक स्त्री को दे रखा है। पुरुष ने उसे अपनी संगिनी और अर्धांगिनी समझने के बजाय घर की नौकरानी और अपने विलास का साधन बना लिया है, नतीजा यह है कि हमारा आधा समाज लकवे से पीड़ित है। स्त्री को मानव जाति की माता ठीक ही कहा गया है। हमारा उनके और अपने दोनों के प्रति यह धर्म है कि हमने उसके साथ जो बड़ा भारी अन्याय किया है उसे मिटा दें।' यहां उन्होंने पुरुष वर्ग को भी इस तथ्य के प्रति सचेत किया कि महिलाओं को अशिक्षित रख हम स्वयं

अपना ही नुकसान कर रहे हैं। देश व समान के संदर्भ में इनके दुष्परिणामों की ओर उन्होंने हमारा ध्यान भी आकर्षित किया इस संदर्भ में उनका कथन देखें- 'यदि भारत में 50 प्रतिशत मानव प्राणी हमेशा अज्ञान की दशा में और खिलौना बन कर रहे तो उससे भारत की पूंजी में कितना घाटा होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है।'' स्त्री, पुरुष की साथिन है, जिसकी बौद्धिक क्षमताएँ पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं है, पुरुष की प्रवृत्तियों में उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग और उपांग मे भाग लेने का उसे अधिकार है, और आजादी तथा स्वाधीनता का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को है। जिस तरह पुरुष अपनी प्रवृत्तियों के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना गया है, उसी तरह स्त्री भी अपनी प्रवृत्ति के क्षेत्र में मानी जानी चाहिए।', 'मैने समय-समय पर यह बताया है कि स्त्री में विद्या का अभाव इस बात का कारण नही होना चाहिए कि पुरुष स्त्री से मनुष्य-समाज के स्वाभाविक अधिकार छीन ले या उसे वे अधिकार ना दें। किन्तु इन स्वाभाविक अधिकारों को काम में लाने के लिए, उनकी शोभा बढ़ाने के लिए और उनका प्रचार करने के लिए स्त्रियों में विद्या की जरूरत अवश्य है। साथ ही, विद्या के बिना लाखों को शुद्ध आत्मज्ञान भी नही मिल सकता।'

निसंदेह महिलाओं की शिक्षा का समर्थन व समाज की मुख्य धारा से उन्हें जोड़ने की बात कह कर गाँधी जी ने भारत में एक नयी चेतना का संचार किया। देश की बच्चियां स्कूलों में दाखिला ले इसके लिए एक माहौल बना किन्तु यहां कुछ प्रश्न भी उदित थे। जैविक दृष्टि से एक दूसरे से पृथक, सभ्यता के विकास मे स्वयं के योगदान के प्रति एक दूसरे से अलग व मनोवैज्ञानिक जरियों से भिन्न-भिन्न वृत्ति के बालक-बालिकाओं की शिक्षा का स्वरूप कैसा हो? सदियों से अज्ञान के अंधेरे में रही महिला कैसे एकाएक पुरुषों के साथ बराबरी से कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके। पारंपरिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक ताने-बाने से बंधे उनके पावों को बराबरी से दौड़ने की ताकत कहाँ से मिले? ये कुछ प्रश्न तत्कालीन परिस्थितियों में ऐसे थे जिनके समाधान के बिना स्त्री शिक्षा का माहौल बना सकना सहज नहीं था।

गाँधी जी के व्याख्यानों, उनके द्वारा किये गये राजनीतिक आन्दोलनों व समाज सुधार कार्यक्रमों ने एक-एक कर इन सभी प्रश्नों के उत्तर हमें दिये और महिलाओं की शिक्षा व उन्नति के मार्ग धीरे-धीरे खुल सके।

स्त्री शिक्षा की सामाजिक स्वीकृति

यहां सबसे पहले हम विचार करें सदियों से घर की चारदीवारों के भीतर बन्द महिलाओं के पावों में रफ्तार से दौड़ने की ताकत देने व उस ताकत को समाज द्वारा स्वीकृत किये

जाने का। महिलाएँ घरों के भीतर रहें, पारिवारिक दायित्वों का वहन करें भारतीय नारी के लिए यह एक सम्माननीय सामाजिक स्वीकार्यता थी। हम सभी प्राय: सामाजिक स्वीकार्यता के मध्य ही स्वयं को सहज अनुभव करते हैं। अत: तत्कालीन परिस्थियों में स्त्री शिक्षा के लिए किये जा रहे प्रयासों में पहली आवश्यकता इसके प्रति सामाजिक स्वीकार्यता को हासिल करने की थी। ''गाँधी जी की व्यक्तिगत छवि संत महात्मा की होने के कारण उनके नेतृत्व में शुरु हुए देशभक्ति आन्दोलन की राजनीति और धार्मिक मिली जुली छवि बनी।'' जिसका एक बड़ा फायदा महिला वर्ग को मिला घर की चारदीवारी के भीतर की सामाजिक स्वीकार्यता एक संत के कार्यों के साथ जुड़ने में बाधक नहीं थी। एक घरेलू धर्मपरायण स्त्री की छवि एक संत के देशभक्ति आन्दोलन में भाग लेने से और प्रगाढ़ ही हुयी। अत: गाँधी जी द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलनों से जुड़ने से हर वर्ग की महिलाएं व उनके परिजन सहज ही रहे। और महिलाओं के लिए घरों के बाहर का भी एक साफ सुथरा गौरवपूर्ण मार्ग खुला। हम देखते हैं स्त्री शिक्षा की पहली समस्या उन्हें घरों के भीतर से बाहर तक लाने की ही थी। 'गाँधी जी के नेतृत्व मे महिलाओं के लिए घर के निजी क्षेत्र और स्वतन्त्रता संग्राम के वाह्य क्षेत्र के बीच सामंजस्य सम्भव हो सका।'

इस सामंजस्य ने शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र की एक बड़ी बाधा को तोड़ा और उन्हे बंधे – बंधाए ढर्रे से अलग चलने का साहस भी दिया। 'गाँधी जी के व्यक्तिव की खासियत थी कि वे न केवल महिलाओं में विश्वास जगाने मे सफल थे बल्कि महिलाओं के पुरुष संरक्षकों, पति, पिता, पुत्र, भाइयों का विश्वास भी उन्हें प्राप्त था। उनके नैतिक आदर्श इतने ऊंचे थे कि जब महिलाएँ बाहर आकर राजनीति के क्षेत्र मे काम करती थीं तो उनके परिवार के सदस्य उनकी सुरक्षा के बारे मे निश्चिन्त रहते थे।'

इस निश्चिन्त ने सदियों से पड़ी उन बेड़ियों को बड़े हल्के हाथों से तोड़ दिया जो भारत में महिलाओं की अशिक्षा का बड़ा कारण था। उनके सार्वजनिक कार्यों में एक बड़ी बाधा था। इस संबंध मे एक बड़ी दूरदृष्टि यह थी कि उन्होंने स्त्रियों के कार्यक्षेत्र में सीधे सीधे प्रत्यक्ष प्रवेश करने के बजाए महिलाओं की समस्या के समाधान का मार्ग महिलाओं द्वारा ही खोजे जाने को स्वीकार किया। इससे महिलाएं गौरवान्वित थीं और उनका स्वाभिमान संरक्षित भी। चम्पारन में बिताए अपने कुछ समय मे गाँधी जी ने स्वयं सेवकों की मदद से अस्थाई पाठशाला खोली थी। इन कार्यक्रमों में महिलाओं से संबंधित तथ्य गाँधी जी ने अपनी जीवनी मे लिखे उसका एक अंश देखें– ''जैसे-जैसे मुझे अनुभव प्राप्त होता गया वैसे-वैसे मैंने देखा कि चम्पारन में ठीक से काम करना हो, तो गांवो में शिक्षा का प्रवेश होना चाहिए। लोगों का अज्ञान दयनीय था। गांव के बच्चे मारे-मारे फिरते थे अथवा माता-पिता दो या तीन पैसे की आमदनी के लिए उनसे सारे दिन नील के खेतों

में मजदूरी कराते थे। उन दिनों वहां पुरुषों की मजदूरी दस पैसे से अधिक नहीं थी। स्त्रियों को छह पैसे और बालकों को तीन पैसे थी।'' ''साथियों से सलाह करके मैंने पहले तो छह गांवों मे बालकों के लिए पाठशालाएं खोलने का निश्चय किया। शर्त यह थी कि उस गांवों के मुखिया मकान और शिक्षक का भोजन व्यय दें। यहां अनाज वगैरा देने की शक्ति लोगों में थी। इसलिए लोग कच्चा अनाज देने को तैयार हो गये थे। प्राय: प्रत्येक पाठशाला में एक पुरुष एक स्त्री की व्यवस्था की गयी थी। उन्हीं के द्वारा दवा और सफाई के काम करने थे।'' ''स्त्रियों के मार्फत स्त्री समाज में प्रवेश करना था।'' ''इन अनुभवों में से एक जिसका वर्णन मैंने स्त्रियों की कई संस्थाओं में किया है, यहां देना अनुचित न होगा। भीतिहरवा एक छोटा-सा गांव था। उसके पास उससे भी छोटा गांव था। वहां कुछ बहनों के कपड़े बहुत मैले दिखाई दिये। इन बहनों को कपड़े धोने-बदलने के बारे मे समझाने के लिए मैने कस्तूरबाई से कहा। उसने उन बहनों से बात की।'' गाँधी जी ने बताया कि कस्तूरबाई को महिलाओं ने अपनी उन छोटी-छोटी समस्याओं को बताया जिसे एक पुरुष को वो कभी ना बताती। महिलाएं एक दूसरे के माध्यम से समस्या के समाधान को भी तत्पर हुयी। गाँधी जी आगे लिखते हैं। ''इस प्रकार पाठशाला, सफाई और औषधोपचार के कामों से लोगों में स्वयं के प्रति विश्वास और आदर की वृद्धि हुई और उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस काम को स्थाई रूप देने का मेरा मनोरथ सफल ना हो सका। जो स्वयं सेवक मिले थे, वे एक निश्चित अवधि के लिये ही मिले थे। दूसरे नये स्वयं सेवकों के मिलने से कठिनाई हुयी और बिहार से इस काम के लिए योग्य स्थायी सेवक न मिल सके। मुझे भी चम्पारन का काम पूरा होते होते एक दूसरा काम जो तैयार हो रहा, घसीट ले गया। इतने पर भी छह महीने तक हुए इस काम ने इतनी जड़ पकड़ ली कि एक नहीं तो दूसरे स्वरूप में उसका प्रभाव आज तक बना हुआ है।''

आगे चल कर गाँधी जी द्वारा चलाए गये विभिन्न कार्यक्रमों में महिला समस्या समाधान हेतु महिला के नेतृत्व का सिद्धान्त बहुत हद तक बना रहा। 'उन्होंने महिला नेताओं से कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार महिला शिक्षा एवं महिला अधिकारों के लिए कानून बनाने के लिए काम करना चाहिए, ताकि उन्हें उनके बुनियादी अधिकार मिल सके'।

स्त्रियों का शक्ति स्त्रोत

अब यहां द्वितीय प्रश्न है, सदियों से अज्ञान के अंधेरे में रह रही महिला कैसे एकाएक पुरुषों के साथ बराबरी से कंधे से कंधा मिलाकर चल पड़े। पारम्परिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक ताने बाने में बंधे उनके पावों को बराबरी से दौड़ने की ताकत कहां से मिले। गाँधी जी ने इस प्रश्न का समाधान बड़ी सहजता से करते हुए हम सबका ध्यान भारतीय स्त्रियों की

उन विशिष्टताओं की ओर खींचा जिन्हें हम प्राय: उनकी कमजोरी के रूप में देखते हैं। मानवीय वृत्ति व स्वभाव प्राय: व्यवहार ही होते हैं छोटे और बड़े नहीं। क्रोध एक व्यवहार है। इसका सही उपयोग सार्थकता दे सकेगा। किन्तु गलत उपयोग विनाश। गाँधी जी ने भी भारतीय महिलाओं के आत्मत्यागी, बलिदान, सहनशील, धार्मिक आदि स्वभाव को उनकी प्राथमिक ताकत माना। वे भारतीय स्त्रियो की उस असीम ताकत को जान सके थे जो जहां एक तरफ उनकी कमजोरी का प्रतिविम्ब थी वहीं उनकी असीम ताकत भी बन सकती थी। त्याग व बलिदान की इसी शक्ति के सही इस्तेमाल से वह अपने स्वतंत्रता आन्दोलनों में महिलाओं को पुरुषों की बराबरी पे ला खड़ा करने में सफल रहे। और उन्हें उनकी ताकत का अहसास कराकर पुरुषों के साथ बराबरी से खड़े होने की हिम्मत दे सके।

''गाँधी जी का ध्यान महिलाओं की जुझारू छमता पर पहली बार दक्षिणी अफ्रीका में खिंचा था। वहां उन्होंने देखा कि भारी संख्या में महिलाएं उनके राजनीतिक विचारों से प्रभावित होती हैं। उनके नेतृत्व में हुए कई आन्दोलनों में वे जेल गयी, बिना किसी शिकायत के जेल की कठोर सजा झेली और खदान श्रामिकों को हड़ताल में शामिल कर सकीं।'' ''गाँधी जी ने जाना कि महिलाओं की असली ताकत तो उनमें निहित है हम प्राय: उनकी ताकत को उनकी दुर्बलता के रूप में देखते हैं। गाँधी जी ने कई बार इसका जिक्र किया कि दक्षिणी अफ्रीका के सत्यागृह आन्दोलन में उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग और पीड़ा सहने की अद्‌भुत क्षमता देखी।'' इनका सही इस्तेमाल ही उन्हें उन्नति के शिखर पर ले जायेगा उन्हें पुरुषों साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की ताकत देगा। स्त्री जाति की शक्ति और महत्ता के बारे में गाँधी जी के ये केवल विचार नहीं थे, उन्होंने इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्रस्तुत किये थे। उन्होंने जब तक इस देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश नहीं किया था, स्त्री शक्ति मानो सोई पड़ी थी। नि:सन्देह वह गृह लक्ष्मी और माता के रूप में हमारे पारिवारिक जीवन को प्रकाशित, सुशोभित और मंगलमय कर ही रही थी। किन्तु उसकी अन्य लोकोपकारिणी शक्तियों को प्रकट होने को अवसर अभी नहीं मिल पाया था। यह गाँधी जी के कार्यकाल में बना। स्वाधीनता के युद्ध को उन्होंने ऐसा अपूर्व मोड़ दिया कि असंख्य बहनें पर्दे और अन्त:पुर से बाहर निकल पड़ीं और स्वातंत्य यज्ञ में अपना-अपना अहिर्भाग अर्पण करने में न केवल आपस में होड़ करने लगीं, वरन् कहीं-कहीं पुरुषों से भी आगे बढ़ गयी।' ''पुनरूत्थानवादियों और उग्र सुधारवादियों ने एक ओर मां की पीड़ित छवि तो दूसरी ओर शक्ति स्वरूप 'मां काली' की छवि प्रस्तुत की। सुधारवादियों और नारीवादी राष्ट्रवादियों ने मां की छवि को पुरुषों का पालनहार और सहारा देने वाली के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन गाँधी जी ने मां को नैतिक और आध्यात्मिक गुणों की खान, पुरुषों की गुरु और मार्गदर्शक के रूप में देखा और दूसरों को भी इस रूप में देखने पर जोर दिया।''

''महिलाओं के आत्मत्यागी एवं बलिदानी स्वभाव के हिमायती गाँधी जी पहले व्यक्ति नहीं थे। इससे पहले समाज सुधारकों और पुनरुद्धारकों ने भी इस पर कम जोर नहीं दिया था। गाँधी जी का विशेष योगदान यह था कि उन्होंने लोगों की सोच बदली। समाज सुधारकों ने महिलाओं के आत्मत्याग को एक जर्बदस्ती थोपे कर्मकांड की तरह देखा जो उनकी नजरों में वह सराहनीय नहीं था। पुनरुद्धारकों की सोच थी कि इन कर्मकाण्डों से हिन्दू महिलाओं की एक गौरवमयी छवि बनती है, गाँधी जी ने नारी के इन गुणों को हिन्दू कर्मकांड से अलग कर परिभाषित किया। उन्होने कहा कि यह भारतीय नारीत्व का स्वाभाविक गुण है क्योंकि उनकी अहम भूमिका मां की है।'' अत: उसके द्वारा किये जाने वाले त्याग व संयम के कार्य मातृत्व के परिचालक है दीनता या कमजोरी के नहीं। यह तो एक आत्मबल है जिसे हासिल करने में अन्य देशों की महिलाओं को कई वर्ष लगेगें। उन्होंने कहा 'कि भारतीय पुरुष, भारतीय स्त्रियों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। पश्चात्य महिलाएँ भी भारतीय महिलाओं की कुलीनता, श्रेष्ठता और अहिंसा आदि कई गुणों की सीख उनसे ले सकती हैं।' और यही हम देखते हैं कि बगैर किसी ढ़ेरों-ढ़ेर संसाधन, बगैर किसी क्रान्ति और शोरशराबे के गाँधी जी ने खुद महिलाओं को उनकी उस ताकत का साक्षात्कार कराया जिससे वे स्वयं अनजान थीं। जिसे वे अपने कमजोरी समझ पीछे कहीं बहुत पीछे खड़े होने को तत्पर थीं। अब कुछ मुखरित हो हम सबके बीच आत्मविश्वास से खड़ी थीं। मुखर अभिव्यक्ति ने गुलाम भारत में स्त्री शिक्षा की पृष्ठभूमि तैयार की।

स्त्री शिक्षा के मुद्दे प्राय: उनके व्यवस्थापन से शुरु हो उनके लक्ष्य पर समाप्त होते हैं किन्तु यहां विद्यालयों की व्यवस्था के पूर्व बालिकाओं को घरों से निकल विद्यालय परिधि तक लाने का माहौल, उसकी तत्परता बनाने की भी थी। गाँधी जी के आन्दोलनों, स्त्रियों के प्रति उनकी संवेदनशीलता और स्वच्छ कार्य पद्धति से ये माहौल जाने अनजाने स्वत: बनता दिखाई दिया। बगैर किसी बड़े हेर-फेर के सदियों से प्रोषित भारतीय महिलाओं की पारम्परिक छवि उसकी बड़ी ताकत बन कर उभरी। तुच्छ व निम्न समझे जाने वाले स्त्रियों के गुण व्यवहारगत पैमाने पर ऊँचे दर्जे पर स्थापित हुए। स्त्रियां आत्मविश्वास से ओत-प्रोत नयी चुनौतियों को स्वीकार करने को तत्पर हुयीं।

स्त्री शिक्षा का स्वरूप

भारत में स्त्री शिक्षा की सामाजिक स्वीकार्यता व महिलाओं के आत्मबल की प्रभुता के साथ मुद्दा महिला शिक्षा के स्वरूप का भी कम विवादास्पद नहीं है हम देखते हैं कि आज भी शिक्षा के समान अवसर प्राप्त बालिकाएं एक निश्चित आयु के पश्चात अपनी आगे की शिक्षा जारी रखने और अपनी व्यवसायिक भूमिका के लिए बहुत स्वतंत्र नहीं हो

सकी हैं। आज भी हम सबके बीच शहरी क्षेत्र का एक छोटा वर्ग ही उच्च शिक्षा व स्वतंत्र रोजगार से जुड़ सका है।

स्वयं गाँधी जी भी अपनी उदारवादी दृष्टि के बावजूद स्त्री शिक्षा के स्वरूप के संबंध में कुछ हद तक पारंपरिक बने रहे। स्त्री पुरुष के बीच जैविक भिन्नताओं को उन्होंने शिक्षा व्यवस्था में भी जगह दिये जाने की वकालत करते हुये कहा– 'प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत सा भाग दोनो वर्गों के लिये समान हो सकता है, इसके सिवा और सब बातों में बहुत असमानता है, जैसे प्रकृति ने पुरुष और स्त्री में भेद रखा है। वैसे ही शिक्षा में भेद की आवश्यकता है, संसार में दोनों का समान अधिकार है, परन्तु अनके कामों में बँटवारा पाया जाता है।' 'उनके विचार से महिलाओं को पुरुषों के स्तर तक लाने के लिये शिक्षा हेतु विशेष अवसर देने आवश्यक हैं। सामान्य शिक्षा के साथ ही महिलाओं को घरेलू कार्यों, बच्चों के पालन–पोषण, स्वच्छता, शुश्रुशा और स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा भी दी जाये।' वास्तव में गाँधीजी की दूरदृष्टि यह जान सकी थी कि स्त्री–पुरुष समानता की जोरदार वकालत करने के क्रम में नारीवादी भाषा में हम कितनी ही दमदारी से बराबरी की ताकत, बराबरी के उद्वेगों की बात करें किन्तु स्त्री–पुरुष के बीच की शारीरिक, मानसिक, जैविक भिन्नताओं से मुंह मोड़ना कहीं ना कहीं स्त्री–पुरुष दोनों के लिए असहज होगा।

गाँधी जी ने स्त्री शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में उन सिरों को सजोएं रखने पर जोर दिया था जिसमें गुंथा भारतीय समाज ताकतवर ही हुआ था। पति–पत्नी के आपसी सहयोग व सामान्जस्य ने पारिवारिक ढ़ांचे को मजबूती देकर समाज को सकारात्मकता ही दी थी। इसमें गिरावट कहां थी। गाँधी जी ने इस विशिष्टता को सजोएं रखने की वकालत की और कहा ''स्त्री और पुरुष समान दर्जे के हैं। परन्तु एक नहीं, उनकी अनोखी जोड़ी वे एक दूसरे की कमी पूरी करने वाले हैं दोनों एक दूसरे का सहारा हैं, यहां तक कि एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता किन्तु यह सिद्धांत ऊपर की स्थिति में से ही निकल आता है कि पुरुष या स्त्री कोई एक अपनी जगह से गिर जाए जो दोनों का नाश हो जाता है, इस लिए स्त्री शिक्षा की योजना बनाने वालों को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए।'' ''मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ, लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्री दुनियां की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती। वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है लेकिन पुरुष की नकल करके वह उस ऊंचाई तक नही उठ़ सकती, जिस ऊंचाई तक उठ़ना उसके लिए सम्भव है।' महिलाओं के लिए नयी भूमिका के मार्ग खोलने के क्रम में वह स्त्री–पुरुष के बीच किसी प्रकार का संघर्ष नहीं चाहते, संदर्भित कथन देखें। 'जिस रूढ़ि और कानून को बनाने में स्त्री का कोई हाथ नहीं

था। और जिसके लिए सिर्फ पुरुष ही जिम्मेदार हैं, उस कानून और रूढ़ि के जुल्मों ने स्त्री को लगातार कुचला है, अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरुषों को अपने भविष्य की रचना का है, उतना और वैसा ही अधिकार स्त्रियों को भी अपना भविष्य तय करने का है। लेकिन अहिंसक समाज की व्यवस्था में जो अधिकार मिलते हैं, वे किसी ना किसी कर्तव्य या धर्म के पालन से प्राप्त होते हैं। इस लिये यह भी मानना चाहिये कि सामाजिक आचार व्यवहार के नियम स्त्री और पुरुष दोनों आपस में मिलकर और राजी खुशी तय करें। इन नियमों का पालन करनें के लिये बाहर की किसी सत्ता या हुकूमत को जबरदस्ती काम ना देगी।''

यहां ध्यान देना होगा, गाँधी जी ने महिला व पुरुष दोनों को अपने आप में ताकतवर मानते हुये भी एक दूसरे का पूरक माना था अत: सुधार संबंधी किसी भी व्यवस्था में वह इन दोनो के बीच संघर्ष को स्वीकार नही कर सके। एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला सकने की ताकत उन्होंने एक दूसरे के सहयोग, सामंजस्य और एक दूसरे के प्रेमपूर्ण व्यवहार में देखी। स्त्री शिक्षा के स्वरूप निर्धारण के मध्य उन्होंने एक और जरुरी तथ्य की ओर हमारा ध्यान खींचा। क्या पुरुषों की शिक्षा सुव्यवस्थित व परिपूर्ण है? ध्यान से देखें तो वहां भी ढ़ेरों व्यवधान है। अब उन्ही व्यवधानों में महिलाओं को भी गूंथ दिये जाना क्या ठीक होगा गाँधी जी ने कहा। ''पुरुषों की शिक्षा पद्धति जैसी दोषपूर्ण है। वैसी ही स्थिति स्त्रियों की शिक्षा पद्धति की भी है। भारत में स्त्री-पुरुषों का क्या संबंध है, स्त्री का आज समाज में क्या स्थान है, इन बातों पर विचार ही नही किया गया है।'' परिवार में एक महिला के गौरवपूर्ण दर्जे और वर्चस्व को हिन्दुस्तानी महिला, हिन्दुस्तानी समान की एक ताकत के रूप में देखते हुए उन्होंने कहा था, ''घर में राज करने का अधिकार स्त्री का है, बाहर की व्यवस्था का स्वामी पुरुष है। पुरुष आजीविका के साधन जुटाने वाला है। स्त्री संग्रह और खर्च करने वाली है। वह बच्चों को पालने वाली है, उनकी विधाता है, उस पर बच्चों का चरित्र निर्भर है, वह बच्चों की शिक्षिका है, इस अर्थ में भी वह संतान की माता है, पुरुष इस अर्थ में संतान का पिता नहीं है। एक खास उम्र के बाद पिता का असर पुत्र पर कम हो जाता है, परन्तु मां अपना दर्जा कभी नही छोड़ती। बच्चा आदमी बन जाने पर भी मां के सामने बच्चे की तरह व्यवहार करता है, पिता के साथ वह ऐसा संबंध नही रख सकता।'' अत: स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम में उसके मातृत्व संबंधी उत्तरदायित्व को निखारने संबंधी प्रावधान रखे जाना उचित होगा।

गाँधी जी ने स्पष्टता से कहा, ''भीतरी कामों में स्त्री की प्रधानता है इसलिए गृहव्यवस्था, बच्चों की देखभाल, उनकी शिक्षा वगैरा के बारे में स्त्री को विशेष ज्ञान होना चाहिए। यहां किसी को कोई भी ज्ञान प्राप्त करने से रोकने की कल्पना नही है, किन्तु

शिक्षा का क्रम इन विचारों को ध्यान में रखकर न बनाया गया, तो स्त्री-पुरुष दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने का मौका नहीं मिलेगा''। गाँधी जी का मानना था कि प्रारम्भ में बालक-बालिका को सभी विषय समान रूप से पढ़ाए जाएं । भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, आदि के साथ उन्हें हस्तकला व नैतिकता की शिक्षा दी जाए किन्तु आगे चलकर उनके लिए ग्रहविज्ञान, ग्रहकार्य की शिक्षा व्यवस्था अवश्य की जाए।'' ''मोटे तौर पर उन्होने स्त्री और पुरुष की शिक्षा में केवल इतना ही अन्तर किया कि स्त्रियों को गृहकार्य की अतिरिक्त शिक्षा दी जाए।''

गाँधी जी ने कहा भी था, ''एक खास उम्र के बाद स्त्रियों के लिए दूसरी ही तरह की शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए। उन्हें गृहव्यवस्था करने का गर्भकाल में सावधानी रखने का, बालकों का पालन-पोषण करने का ज्ञान देने की जरुरत है। इस योजना को बनाने का काम बहुत कठिन है। शिक्षा क्रम में यह नया विषय है, इस बारे में खोज और निर्णय करने के लिए चरित्रवान और ज्ञानवान स्त्रियों तथा अनुभवी पुरुषों की समिति नियुक्त करके कोई योजना बनवाने की जरुरत है।'' लड़कियों की शिक्षा का आदर्श तो यह है कि हमारे यहां शिक्षा पाई हुई लड़की न गुड़िया बने न सुन्दर नाच करने वाली, बल्कि अच्छी स्वयं सेविका बने। गाँधी जी के अनुसार ''बराबरी का यह अर्थ कदापि नही था कि महिलाएं वे सब काम करें जो पुरुष करते हैं, गाँधी जी की आदर्श दुनिया में स्त्रियों और पुरुषों के अपने स्वभाव व क्षमतानुसार काम के अलग-अलग क्षेत्र निश्चित थे। उन्होंने महिलाओं को स्वदेशी व्रत लेने को कहा।'' उन्होंने स्त्रियों को उच्च नैतिक आदर्श अपनाने के लिए कहा। उन्होंने उनके सामने सीता, दमयन्ती और द्रोपदी के आदर्श रखे, उन्होंने स्त्रियों को निर्भय होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

वह स्त्री को ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना मानते थे। उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि ''यद्धपि पुरुष और स्त्री का कार्यक्षेत्र थोड़ा भिन्न होता है लेकिन उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताएं समान होती हैं इसलिए दोनों को अपने-अपने विकास के समान अवसर देने चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया कि स्त्री को मनुष्य रूप से पत्नी माता और समाज के निर्माता के रूप में कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरुष से भिन्न अवश्य होती है पर अपने तीसरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अपनी सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए।'' आत्मसंयम व नैतिकता के ये नियम उन्होने पुरुषों के लिए भी निश्चित किये उनका मानना था कि ''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिली है जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता है और सोचे हुये काम को आसानी से और प्रसन्नतापूर्वक करता है, जिसकी बुद्धि शुद्ध शान्त और न्यायदर्शी है, जिसका मन प्रकृति के नियमों में ज्ञान से

भरपूर है, जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अन्तरवृति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और दूसरों को भी अपने जैसा समझता है, ऐसे ही व्यक्ति को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं। क्योंकि वह प्रकृति के नियमों के साथ चलता है, वह प्रकृति का अधिकतम उपयोग करेगा और प्रकृति उसका।'' दैनिक जीवन में उच्च नैतिक आदर्शों के प्रतिमान स्थापित करने वाले गाँधी जी ने शिक्षा को भी इससे संबंधित किया और महिलाओं की शिक्षा में उनके आत्मबल, संयम, चरित्र व नैतिकता को ऊँचा उठाए जाने के प्रयासों को जगह दी। गरीबी और बेकारी की समस्या को गाँधी जी धुनने, काटने, बुनने और दूसरे दस्तकारियों के पुनर्रुद्धार द्वारा हल करना चाहते थे। ये हस्त उद्योग केवल आर्थिक दृष्टि से ही मूल्यवान नहीं है बल्कि ये सूझ-बूझ, आत्मसम्मान और स्वाभिमान का ही प्रबलता से संचार करने वाले हैं। स्कूली शिक्षा में गाँधी जी ने इन क्रियाकलापों को सम्मिलित किये जाने को स्वीकृति दी थी। उनके द्वारा सम्पादित बेसिक शिक्षा की आधारण में हस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया गया था। बालिकाएं यहां दस्तकारी, कताई, बुनाई आदि सीख सकती थी और अपने घरेलू काम काज में इसका उपयोग कर वे परिवार को आर्थिक मजबूती दे सकती थी। हां परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियों से वह पुरुष को मुक्त करते नहीं दिखे।

खादी द्वारा वे महिलाओं को श्रम प्रक्रिया में लाना चाहते थे। उनका कहना था कि ''भारत इसलिए गरीब हो गया है क्योंकि उसने स्वदेशी हस्तकलाओं का परित्याग करके विदेशी वस्तुओ पर निर्भर करना शुरू कर दिया है महिलाएं गृह निर्माता और पोषक हैं और भारत के पुनर्रुथान में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन वे गरीबी के असली कारण से अनजान हैं । एक बार इसको समझ जाए तो वे खादी अपना लेंगी। वे घर में रह कर भी खादी उधोग चला सकती है।'' इन सबके बावजूद महात्मा गाँधी महिलाओं को पुरुषों के वर्चस्व वाले रोजगार में भागीदारी को उचित नहीं मान सके। उनका मानना था ''स्त्री के लिए स्वतंत्र कमाई करने की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। जिस समाज में स्त्रियों को तार मास्टर या टाईपिस्ट अथवा कम्पोजिटर का काम करना पड़ता हो, उसकी व्यवस्था बिगड़ी हुई ही समझनी चाहिए। इसलिए जिस तरह स्त्री को अंधेरे में और हीन दशा में रखना बुरा है, उसी तरह उसे पुरुषों के काम सौपना निर्बलता का सूचक है और उस पर जुर्म करने के बराबर है।''

उपर्युक्त विश्लेषण द्वारा स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी ने महिलाओं को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराये जाने की वकालत की। स्वतंत्रता आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी प्राप्त कर वे उन्हें घरों से बाहर निकाल उनकी शिक्षा की प्रारम्भिक जटिलता को दूर कर सके। ''उनका सबसे बड़ा योगदान था महिलाओं के सार्वजनिक कार्यों को वैध बनाना

तथा उनका वर्ग और सांस्कृतिक परिधि से बाहर एक व्यापक दायरा बनाना।'' इस व्यापक दायरे में शिक्षा एक जरूरत बनती दिखाई दी और महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में आगे आयीं, अभिभावक व रूढ़िवादी समाज स्त्री शिक्षा के प्रति उदार होता दिखाई दिया और भारत देश में बालिकाओं को शिक्षित किये जाने का माहौल बना।

स्त्री शिक्षा को उन्होंने इन सबका एक सशक्त साधन माना और स्त्रियों के लिए एक उम्र के बाद गृहशिक्षा, की वकालत की। उनके लिए कताई, बुनाई, हस्तकला प्राथमिक चिकित्सा आदि की शिक्षा जरुरी मानी। बालक-बालिका की शिक्षा में इस भेद के कारण उन्हे नारीवादी आन्दोलन की आलोचना का शिकार भी होना पड़ा किन्तु जरा ध्यानपूर्वक देखें तो यहां गाँधी जी का उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों में किसी प्रकार की कटौती करना नहीं था। वे तो महिलाओं के प्रकृतिजन्य उत्तरदायित्व के साथ, शिक्षा का तालमेल बिठाए जाने को तत्पर थे। माातृत्व सुख के वरदान से सुशोभित स्त्री यदि मातृत्व के उत्तरदायित्वों की शिक्षा भी ग्रहण करे तो इसमें अनुचित क्या? यहाँ उसे अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने की ताकत ही मिलेगी।

गाँधी जी के स्त्री शिक्षा संबंधी विचार वास्तव में वह मध्य मार्ग है जहां वे उसे किसी ऐसी जटिलता से बचाते दिखे जिसमें उसकी खुद की स्वाभाविकता, उसका खुद का अधिकार क्षेत्र बाधित हो। सदियों से पोषित स्वस्थ्य पारिवारिक ढांचे में उथल-पुथल हो। गाँधी जी भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रचारित शिक्षा के विरोधी थे। अत: स्त्री शिक्षा के संबंध में उनकी व्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर सके थे। उन्होंने कहा था ''हमें यह भी जान लेना चहिए कि जो पढ़ाई अंग्रेजों का उतारा है, वह हमारा श्रृंगार बन रही है, उनके ही विद्वान उसमें दोष त्रुटियां निकाला करते हैं। शिक्षा की पद्धति में हेर-फेर होता ही रहता है, पर हम तो अज्ञानतावश उन्हीं चीजों से चिपके रहते हैं जिन्हें वे निकम्मा समझ कर फेंक देते हैं।''

गाँधी जी ने स्त्री शिक्षा का स्वरूप, उसके पाठ्यक्रम आदि को स्वयं की आवश्यकता के अनुरूप बनाए जाने पर जोर दिया था। उन्होंने अपनी कही बातों को सिर्फ कहा ही नहीं बल्कि उन्हे कार्यरूप में परिणित भी किया। स्त्रियों को दी जाने वाली शिक्षा में उनकी स्वाभाविकता को जगह दे कर उन्होनें स्त्रियों के उस मनोवैज्ञानिक पक्ष को हमारे सामने रखा था। जिस पर प्राय: पुरुषों के लिए पुरुषों द्वारा बनाई गयी व्यवस्था में ध्यान ही नहीं दिया जाता। हमारी बच्चियों व युवतियों को बालकों व युवकों के लिए निर्मित ढ़ाचे में ढ़ल जाने को विवश होना पड़ता है। स्त्री शिक्षा संबंधी उनकी यह स्पष्ट दृष्टि आज भी हमारा मार्ग दर्शन कर सकने में सक्षम है, हमें व्यवस्थित कर सकने में समर्थ है।

संदर्भ

कुलकर्णी सुमित्रा गाँधी, (2009) *महात्मा गाँधी मेरे पितामह : व्यक्तिव और परिवार*, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 182

स्पीचेज एण्ड़ राइटिंग्स आफ महात्मा गाँधी : पृ. 424

गाँधी जी (2006) *मेरे सपनों का भारत,* संग्राहक – आर के प्रभू, नव जीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ. 236 – 239

रोला रोमा (2009) *महात्मा गाँधी जीवन और दर्शन*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. 45

सुमन 'रामनाथ' द्वारा सम्पादित (1968) *शिक्षण और संस्कृति*, उत्तर प्रदेश गाँधी स्मारक निधि, सेवापुरी, वाराणसी पृ. 216

सम्पूर्ण गाँधी वाङमय ग्रन्थ (1965) खण्ड 4 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नयी दिल्ली पृ. 300

स्पीचेज एण्ड़ राइटिंग्स आफ महात्मा गांधी, पृ. 425

गाँधी जी (2006) *मेरे सपनों का भारत*, संग्राहक आर.के. प्रभू, नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद पृ. 244

आर्य सांघना, मेनन निवेदिता तथा लोकनीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति: संघर्ष तथा मुद्दे*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

देसाई नीरा तथा ठक्कर ऊषा (2008) *भारतीय समाज में महिलाएं,* धुसिया सुभी द्वारा अनुवादित, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नयी दिल्ली पृ. 11

आर्य सांधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे*, पूर्वसंदर्भित, पृ. 168

मोहनदास करमचन्द्र गाँधी (2008) *सत्य के प्रयोग,* गाँधी जी की संक्षिप्त आत्मकथा राजपाल एण्ड़ सन्स, दिल्ली, पृ. 159

आर्य सांधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे* पूर्वसंदर्भित पृ. 157

उपाध्याय हरिभाऊ (2005) *बापू कथा,* सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 240

आर्य संरचना, मेनन निवेदितां तथा लोक नीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति: संघर्ष तथा मुद्दे* पूर्वसंदर्भित पृ. 169

कुमार राधा (2005) *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली पृ. 125

द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश (20.10.1917) उद्धधृत *सम्पूर्ण गाँधी वाङमय ग्रन्थ*, खण्ड़ 14 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली पृ.: 34

शुक्ला, सी.एस. सफाया, आर.एन. तथा शैदा, बी.डी. (2005) *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक* धनपतराय पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली पृ. 187

गाँधी जी (2006) *मेरे सपनों का भारत,* संग्राहक आर.के. प्रभू , पूर्व संदभित, पृ. 244

गाँधी के शैक्षिक विचार (1999) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा प्रकाशित, नयी दिल्ली, पृ. 121

गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश (20.10.1917) उद्धधृत *गाँधी के शैक्षिक विचार* (1999) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली पृ. 121

गाँधी जी (2006) *मेरे सपनों का भारत,* संग्राहक आर.के. प्रभू, पूर्व संदभित, पृ. 244–245

लाल रमन बिहारी (2004) *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त,* रस्तोगी पब्लिकिशन, मेरठ पृ. 187

द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश (20.10.1917) *उद्धधृत गाँधी के शैक्षिक विचार* (1999) ,पूर्व संदभित, पृ. 122

नड़ियाद में दिये गये भाषण का अंश उद्धधृत 'सुमन' रामनाथ (1968) *शिक्षण और संस्कृति,* पूर्व संदर्भित, पृ. 90

आर्य सांधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे* पूर्व संदर्भित पृ. 157

शर्मा रामनाथ (1996) प्रमुख *भारतीय शिक्षा दार्शनिक,* एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली पृ 186

लाल रमन बिहारी (2004) *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त,* रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ पृ. 187

शम्भुनाथ द्वारा सम्पादित (2006) *सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज,* भाग 1, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ. 454

शर्मा बी.एन., शर्मा रामकृष्ण दत्त, सविता शर्मा (2009) *भारतीय राजनीतिक विचारक,* रावत पब्लिकेशन नयी दिल्ली, पृ. 198

आर्य साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी (2006) *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* पूर्वसंदर्भित, पृ. 158

द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश (20.10.1917) उद्धधृत *गाँधी के शैक्षिक विचार* (1999) पूर्वसंदर्भित, पृ. 121

आर्य सांधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी द्वारा सम्पादित (2006) *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* पूर्वसंदर्भित पृ. 169

शम्भुनाथ द्वारा सम्पादित (2006) *सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज,* भाग 1, पूर्वसंदर्भित पृ. 465